सितंबर–2023

अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष – 87 | अंक – 9 | प्रति – ₹ 25 | ₹–300 वार्षिक

16 देवाधिदेव महादेव का स्वरूप
24 एकांत का आनंद
36 व्यक्तित्व का आधार है व्यवहार
51 नई शिक्षा नीति से जुड़े हमारे दायित्व

(अखण्ड ज्योति, पृष्ठ–5)

धर्म और सांप्रदायिकता

कई व्यक्ति धर्म और सांप्रदायिकता को एक समझकर दोनों को आपस में मिला देते हैं और एक का दोष दूसरे पर मढ़कर एक उलझन भरी स्थिति पैदा कर देते हैं। इस गड़बड़ी से बचने के लिए हमें धर्म–भावना और सांप्रदायिकता का अंतर भली प्रकार समझ लेना चाहिए।

धर्म अंत:करण की उन उच्च भावनाओं को कहते हैं, जो मानव जीवन को उत्कर्ष एवं कल्याण के पथ पर ले जाती हैं। धर्म के दस लक्षण बताते हुए भगवान मनु ने उन्हीं गुणों को गिनाया है, जिनको अपनाने से जीवन में पवित्रता, संयम, उदारता एवं उन्नति की ओर प्रगति होती है। यह धर्मतत्त्व मनुष्य प्राणी का स्वभाव है। वह उसकी आत्मा की पुकार है, इस तत्त्व का आचरण करने से अंतस्तल में शांति मिलती है और उसके विपरीत आचरण करने पर अंतरंग जीवन में घोर अशांति उत्पन्न होती है।

धर्म का पालन किए बिना न व्यक्ति की, न समाज की, किसी की भी शांति और सुव्यवस्था स्थिर नहीं रह सकती, इसलिए धर्म की धारणा उतनी ही आवश्यक मानी गई है, जितनी कि जलवायु और अन्न का सेवन। लोगों को धार्मिक बनाने के लिए प्राय: सभी विचारवान व्यक्ति अपने प्रयत्न जारी रखते हैं। यही प्रयत्न सामूहिक रूप से भी विविध प्रक्रियाओं द्वारा किए जाते हैं। सदाचारी, कर्त्तव्यपरायण, सच्चे नागरिक, देशभक्त, लोकसेवक, धर्मवान एवं ईश्वर भक्त का एक ही अर्थ है।

दो पैर के पशु को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने के लिए धर्म की अभिभावना की गई है। इस धर्म भावना को जीवन में भली भाँति, अंतस्तल में अधिक गहराई तक धारण किया जा सके, इस दृष्टि से धार्मिक प्रथाएँ, परिपाटियाँ कर्मकांड, विश्वास, सिद्धांत, पूजा, उपासना, संस्कार, शास्त्र आदि की व्यवस्था की गई। यह सब बातें मिलकर एक 'समाज धर्म' बनाता है।

हिंदू धर्म, इस्लाम, ईसाइयत, बौद्ध धर्म आदि अनेकों धर्म, समय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए अवतीर्ण हुए हैं। देश, काल, पात्र की आवश्यकता और स्थिति का ध्यान रखते हुए समाज धर्मों का प्रचलन किया अथवा पुराने प्रचलनों में आवश्यक सुधार किया। इन सभी 'समाज धर्मों' ने एक ही मूल धर्म तत्त्व से प्रकाश ग्रहण किया है। उसी के आधार पर उन्होंने अपना बाह्य रूप विनिर्मित किया है। सभी समाज धर्म–सदाचार, कर्त्तव्यपरायणता, संयम, लोकसेवा, उदारता आदि उच्च मानवीय गुणों की मानव हृदय में स्थापना को अपना एकमात्र उद्देश्य मानते हैं। कार्यप्रणाली पृथक–पृथक होते हुए भी सब धर्मों में समानता है। तरीके, विश्वास, विधान अलग–अलग होते हुए भी वे सब मनुष्य को सच्चे अर्थों में मनुष्य बनाने का प्रयत्न करते हैं।

सब धर्मों में इतनी अंतरंग एकता होते हुए भी आज हम देखते हैं कि धर्म के नाम पर भारी विद्वेष और रक्तपात फैल रहा है। इसे देखकर स्थूलदृष्टि वाले लोग ऐसा सोचने को विवश होते हैं कि सारे झगड़ों की जड़ यह धर्म ही है। जब तक इसे जड़–मूल से नष्ट नहीं कर दिया जाएगा, तब तक ये दुनिया चैन से न बैठ सकेगी। परंतु यह विचार बहुत ही उथला है, वह एक तर्क मालूम पड़ता है, पर वस्तुत: तर्काभास मात्र है।

धर्म के लिए–धर्म के कारण–कभी कोई झगड़ा नहीं होता। झगड़ों का कारण है 'सांप्रदायिकता'। सांप्रदायिकता का अर्थ है–संकीर्णता, अनुदारता, स्वार्थपरता, अहंकारिता।

श्रीराम शर्मा आचार्य

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।
उस प्राणस्वरूप, दुःखनाशक, सुखस्वरूप, श्रेष्ठ, तेजस्वी, पापनाशक, देवस्वरूप परमात्मा को हम अपनी अंतरात्मा में धारण करें। वह परमात्मा हमारी बुद्धि को सन्मार्ग में प्रेरित करे।

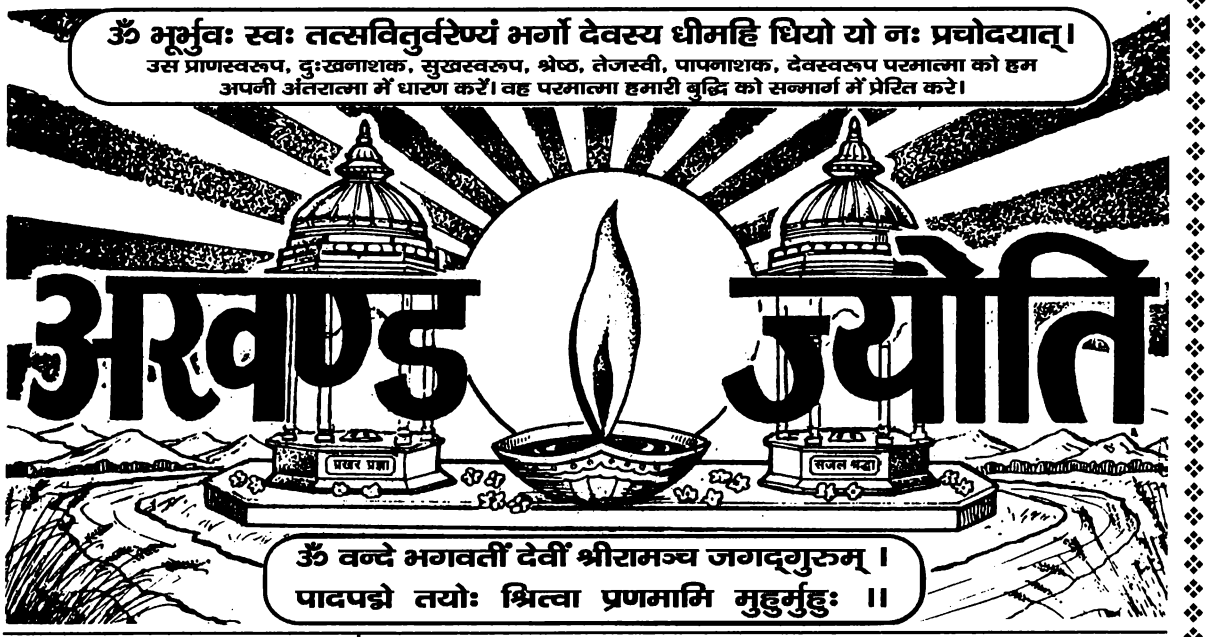

ॐ वन्दे भगवतीं देवीं श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449
2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	87
अंक	:	09
सितंबर	:	2023
भाद्रपद-आश्विन	:	2080
प्रकाशन तिथि	:	01.08.2023

वार्षिक चंदा

भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में	:	6000/-

देवत्व

वर्तमान समय एक परिवर्तन की माँग को लेकर के प्रकट हुआ है। वर्तमान समय में विश्वभर में व्याप्त अंधकार ने जैसी परिस्थितियों को जन्म दिया है, उनके परिणामस्वरूप स्वार्थ और संकीर्णता फैशन में आए दिखाई पड़ते हैं और धर्म, न्याय, नीति, सदाचार अपने अस्तित्व के लिए जूझते नजर आते हैं। यह सत्य है कि धन बढ़ा है, साधन बढ़े हैं, सुविधाएँ बढ़ी हैं, पर यह भी सत्य है कि उसी अनुपात में लोगों का चरित्र गिरा है, भावनाएँ सिकुड़ी हैं और परस्पर के स्नेह और विश्वास का स्थान शक, संदेह, कठोरता और कुटिलता ने ले लिया है।

सारांश में कहें तो वर्तमान समय की परिस्थितियाँ ऐसी हैं जिनमें देखने वाले संपूर्ण विनाश की संभावनाओं को देख सकते हैं और यदि उस विनाश का आलिंगन करने की अभीप्सा हमारे हृदय में न हो तो ये परिस्थितियाँ अपने स्वरूप में अविलंब परिवर्तन की माँग करती हैं। ऐसा इसीलिए; क्योंकि अब दो ही विकल्प मानवता के सम्मुख हैं—एक तरफ तो संपूर्ण, वीभत्स विनाश है तो दूसरी ओर समग्र, समुन्नत भविष्य है। एक तरफ की संभावना विनाश की, विध्वंस की, विप्लव की संभावना है तो दूसरी तरफ की संभावना सुख की, शुभ की, मंगल की, कल्याण की संभावना है और यह समय उसी संभावना के चयन का है। उसी संभावना के जागरण का पथ पूज्य गुरुदेव एवं वंदनीया माताजी ने दिखाया, जब उन्होंने 'मनुष्य में देवत्व का उदय और धरती पर स्वर्ग का अवतरण' जैसे चिंतन को प्रदान किया। मनुष्य के जीवन का वास्तविक आनंद मिलता ही तब है, जब इसके भीतर से देवत्व रूपी उत्कृष्टता का कमल खिलता है। उसी संभावना के जागरण का नाम देवत्व है, जो हमें उच्चता की ओर लेकर के जाता है। ❑

विषय सूची

- आवरण-1 — 1
- आवरण-2 — 2
- देवत्व — 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  समस्त भाषाओं की जननी—संस्कृत — 5
- तीनों शरीरों में सविता के आलोक की ध्यान-धारणा — 7
- **पर्व विशेष—श्रीकृष्ण जन्माष्टमी**
  ऐसे हुआ कृष्ण प्रियदास को स्वरूप-साक्षात्कार — 9
- जीवन में स्वर्ग का अवतरण — 11
- युग विभीषिका का समुचित एवं समग्र समाधान — 13
- देवाधिदेव महादेव का स्वरूप — 16
- सच्चे भक्त को होती है सर्वत्र ब्रह्मभाव की अनुभूति — 18
- संत रविदास की भगवद्भक्ति — 20
- **पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—12**
  घर में सिमटा स्वर्ग — 22
- एकांत का आनंद — 24
- ऐसे बनें भगवत्कृपा के अधिकारी — 26
- युवाओं को दिशा दें — 29
- **चेतना की शिखर यात्रा—252**
  सजल श्रद्धा-प्रखर प्रज्ञा — 31
- प्राच्य ग्रंथों में विज्ञान — 34
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—173**
  किशोरियों के मानसिक स्वास्थ्य पर शोध — 36
- व्यक्तित्व का आधार है व्यवहार — 39
- बेटियों की गरिमा और क्षमता — 42
- **युगगीता—280**
  क्या है सात्त्विक दान — 45
- सोशल मीडिया और मानसिक स्वास्थ्य — 48
- नई शिक्षा नीति से जुड़े हमारे दायित्व — 51
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  प्रबुद्धों को आमंत्रण (पूर्वार्द्ध) — 53
- **विश्वविद्यालय परिसर से—219**
  योगमय हुआ विश्वविद्यालय — 61
- **अपनों से अपनी बात**
  विश्व की एकमात्र एवं प्रथम संस्कृति — 63
- यह दैवी अभियान है (कविता) — 66
- आवरण—3 — 67
- आवरण—4 — 68

आवरण पृष्ठ परिचय

गणपति श्रीगणेश

सितंबर-अक्टूबर, 2023 के पर्व-त्योहार

गुरुवार	07 सितंबर	श्रीकृष्ण जन्माष्टमी 'वै.'
रविवार	10 सितंबर	अजा एकादशी
गुरुवार	14 सितंबर	कुशाग्रहणी अमावस्या
रविवार	17 सितंबर	विश्वकर्मा / वाराह जयंती
सोमवार	18 सितंबर	हरितालिका व्रत
मंगलवार	19 सितंबर	श्रीगणेश चतुर्थी
बुधवार	20 सितंबर	ऋषि पंचमी
गुरुवार	21 सितंबर	सूर्य षष्ठी
मंगलवार	26 सितंबर	जलझूलनी एकादशी 'वै.' / वामन जयंती
शुक्रवार	29 सितंबर	महाप्रयाण दिवस वंद. माताजी / महालयारंभ
सोमवार	02 अक्टूबर	गांधी जयंती / शास्त्री जयंती
शनिवार	07 अक्टूबर	मातृनवमी
मंगलवार	10 अक्टूबर	इंदिरा एकादशी
शनिवार	14 अक्टूबर	सर्व पितृमोक्ष अमावस्या
रविवार	15 अक्टूबर	नवरात्रारंभ
शुक्रवार	20 अक्टूबर	सूर्य षष्ठी
मंगलवार	24 अक्टूबर	विजयादशमी
बुधवार	25 अक्टूबर	पापांकुशा एकादशी
शनिवार	28 अक्टूबर	शरद पूर्णिमा / वाल्मीकि जयंती

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

समस्त भाषाओं की जननी—संस्कृत

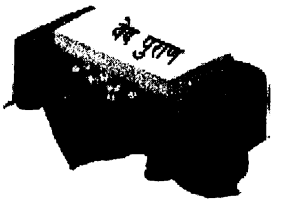

भारतीय चिंतन में भारत, सदा से वैश्विक सभ्यता व संस्कृति का केंद्र रहा है। **'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा'** का उद्घोष करने वाले वैदिक ऋषि इस सत्य के साक्षी थे कि विश्व की प्रथम व एकमात्र संस्कृति का अभ्युदय देवात्मा हिमालय की छाया में, गंगा की गोद में व भारत की इसी पुण्यभूमि में हुआ था, जिसे बाद में दिक्-दिगंतर तक पहुँचाने का कार्य परवर्ती चिंतकों, विचारकों व ऋषियों ने किया।

पौराणिक मान्यता यही कहती है कि विश्व की प्रथम और आज भी समस्त विश्व में सर्वाधिक आदर से भूषित संस्कृत का जन्म इसी धरती पर हुआ, जो बाद में वैदिक संस्कृति के विस्तार का माध्यम बनी।

संस्कृत को भाषाविज्ञानी विश्व की समस्त भाषाओं की जननी मानते हैं, व विशेष रूप से इंडो-यूरोपियन भाषाएँ तो मात्र संस्कृत से ही निकली मानी जाती हैं। कालांतर में संस्कृत के जर्मन, रोमेनिक व स्लाव भाषाओं पर पड़े प्रभाव तो बहुत-सी विज्ञ चर्चाओं का विषय बने हैं, परंतु इसी भाषा के रूसी संस्कृति पर पड़े भारतीय प्रभाव को वहाँ आए कम्यूनिज्म के दौर में पूरी तरह नजरअंदाज कर दिया गया, परंतु विगत दिनों भारत, रूस व विश्व के अन्य विद्वानों ने इस क्षेत्र में गंभीर प्रयास करने आरंभ कर दिए हैं जिनके शोध के निष्कर्ष आश्चर्यजनक ही कहे जा सकते हैं। भाषा की दृष्टि से यदि संस्कृत व रूसी भाषा में समानता का अध्ययन करें तो परिणाम विस्मयकारी होंगे।

उदाहरणतया अपने को संबोधित करने के लिए रूसी भाषा का शब्द 'स्वोई', संस्कृत के 'स्वयं' से निकला है। इसी प्रकार वे के लिए संबोधन 'त्व', संस्कृत के ही समीचीन है। भौंह या भ्रू रूसी में 'भ्रू' के नाम से, बोलने को गवरित (संस्कृत में गवति), चुराने को या लूटने को ग्रमित (संस्कृत में गृभति) के नाम से, जीवन को 'जिझ्न', गरदन को 'ग्रीवा' (दोनों में), बहेलिया को ओखेतनिक (संस्कृत का आखेटक), वायु को बेहतर (संस्कृत का वात), भगवान को भोग, आग को ओगोन (अग्नि), दरवाजे को छोर (द्वार) के नाम से पुकारा जाता है, जिनकी संस्कृति से हुई उत्पत्ति स्पष्टगत अनुभव की जा सकती है।

यदि यही समानता संबंधपूरक नामों के आधार पर देखी जाए तो और भी ज्यादा अचरज का व विस्मय का सामना करना पड़ेगा। माँ को पुकारने का शब्द मातृ (दोनों भाषाओं में), पिता को पुकारने का शब्द तात्या (संस्कृत का तात), माँ के पिता को पुकारने का शब्द न्यान्या (नाना), पिता के पिता को पुकारने का शब्द प्रदेद (परदादा), पति के भाई को पुकारने का शब्द देवर (दोनों भाषाओं में) समान हैं।

आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि दोनों भाषाओं में संस्कृत के मूल शब्द व धातुओं से बने करीब 60% शब्द हैं। मात्र वे ही शब्द मूल संस्कृत से भिन्न हैं, जिनकी उत्पत्ति विगत 1500 वर्षों में हुई है। चूँकि वर्तमान में प्रचलित संस्कृत का जन्म वैदिक संस्कृत से 4 सदी ईसा पूर्व हुआ था, अतः

यदि इस अवधि में जो भारतीय पूर्वज यहाँ से संस्कृत को लेकर वर्तमान रूस की घाटियों में बस गए हों तो उनके द्वारा 1000 वर्षों में वे परिवर्तन स्वाभाविक रूप से आ गए होंगे।

इसके अतिरिक्त जो एक और आश्चर्य की बात रूसी भाषा व संस्कृत भाषा में देखने को मिलती है—वह यह कि दोनों में वाक्यों को जोड़ने के लिए 'अस्ति' (रूसी में अस्त) का प्रयोग देखने को मिलता है।

इसी शब्द से संस्कृत का अस्तित्व शब्द निकला है। जिसने संभवतया रूसी भाषा में 'एस्तेत्वों' शब्द को जन्म दिया हो। इन भाषागत समानताओं के अतिरिक्त दोनों भाषाओं के उच्चारण में जो संगीतमयता है, वह भी संस्कृत के रूसी प्रभाव को दरसाती है।

विशेषज्ञ मानते हैं कि यदि सभी भाषाएँ समान मूल से उपजी हों तो भले ही उनके बोलने-उच्चारण के तरीके भिन्न हो गए हों, पर जिन स्थानों के नामकरण उनको ध्यान में रखकर किए गए हों वे स्थान अपना नाम वैसे ही रखा पाते हैं, जैसे लेनिनग्राद का ग्राद शब्द, संस्कृत के गढ़ से निकलकर आया है।

यहाँ तक कि रूस की अधिकतर नदियों के नाम संस्कृत से निकले प्रतीत होते हैं, यथा—वजा (वज्र-ताकत), वल्गा (वल्गु-सरल), पद्मा (कमल), सागरा (सागर), हरिमा(हिरन)। उल्लेखनीय है कि 1927 में यूराल पर्वतों के सर्वोच्च पर्वत को जब खोजा गया तो उसका नाम स्थानीय निवासियों द्वारा 'नारद' पुकारा जाता रहा था।

सर्वविदित है कि देवर्षि नारद, पौराणिक मान्यताओं में उत्तर क्षेत्र के निवासी बताए गए हैं। यह पहाड़ आज भी नारदोन्य के नाम से पुकारा जाता है।

इसके अतिरिक्त वर्ष 2007 में रूस के वोल्गा क्षेत्र के स्तारया मेझना गाँव में भगवान विष्णु की एक मूर्ति मिली। जिन पुरातत्त्वविदों ने यह मूर्ति खोजी, उनका कहना था कि इसी स्थान से भारतीय संस्कृति का प्रारंभ हुआ। ये सारे साक्ष्य भारतीय संस्कृति के रूस पर पड़े अपरिमित प्रभाव को दरसाते हैं। ❑

बंगाल के विख्यात शिक्षाविद् पंडित भूदेव मुखोपाध्याय से मिलने संस्कृत महाविद्यालय के शिक्षक पहुँचे। उन्होंने पंडित जी से कहा—"आप संस्कृत के प्रकांड विद्वान हैं, फिर आप अन्य की तरह दुर्गा पूजा महोत्सव धूम-धाम से क्यों नहीं मनाते?" पंडित जी ने उस समय उनके प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, पर इस वार्त्तालाप के कुछ दिन बाद उन्होंने शिक्षा तथा संस्कृत के प्रचार-प्रसार के लिए निर्मित विश्वनाथ संस्कृत ट्रस्ट को डेढ़ लाख रुपये दान में दिए। वे शिक्षक इसी ट्रस्ट द्वारा निर्मित महाविद्यालय में कार्यरत थे। पंडित जी उन्हें संबोधित करके बोले—"मैंने दुर्गा पूजा महोत्सव में धूम-धाम न करके जो पैसे बचाए हैं, ये वही धन है। संस्कृत देववाणी है और माँ दुर्गा के महत्त्व को सामने लाने का श्रेय भी संस्कृत को है। यदि इस धन से संस्कृत की सेवा हो जाए, तो मेरे लिए वही दुर्गा पूजा है।"

तीनों शरीरों में सविता के आलोक की ध्यान-धारणा

व्यक्तित्व की आध्यात्मिक संरचना तीन स्तर पर—स्थूल, सूक्ष्म एवं कारणशरीर के रूप में निर्धारित होती है, जो और गहराई पर उतरने पर पंचकोशों के रूप में तथा और सूक्ष्मस्तर पर षट्चक्रों के रूप में परिभाषित की गई है। प्राथमिक अवस्था में गायत्रीसाधक तीन शरीरों में सविता देवता के दिव्य आलोक की ध्यान-धारणा के साथ आगे बढ़ता है और इनके जागरण एवं विकास के साथ गहनतम स्तर पर उतरता है।

साधक अपने व्यक्तित्व की आध्यात्मिक संरचना के प्रति जितना जागरूक होगा, लाभ उतना ही अधिक होता है। स्वाध्याय, सत्संग एवं आत्मचिंतन एवं मनन की प्रक्रिया में उसे अपनी मानवी सत्ता के तीन पक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। जैसे केले के तने में एक के भीतर दूसरी परत होती है, ऐसे ही शरीर में क्रियातंत्ररूपी काय-कलेवर, विचारतंत्ररूपी मनःक्षेत्र एवं भावतंत्ररूपी अंतःकरण—ये तीनों की सत्ताएँ समायी हुई हैं। इन्हें ही आध्यात्मिक शब्दावली में क्रमशः स्थूल शरीर, सूक्ष्मशरीर और कारणशरीर कहा गया है।

अध्यात्म का व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप इन्हें सुविकसित बनाने का विज्ञान है, जिसमें गायत्री साधना का अपना विशिष्ट महत्त्व रहता है। स्थूल काय ज्ञानेंद्रियों व कर्मेंद्रियों का समुच्चय है। सामान्य क्रम में इसी से हमारा परिचय प्राप्त होता है। इसे ही सुखी-संतुष्ट करने की कोशिश की जाती है। मन व प्राण का समन्वय ही सूक्ष्मशरीर है। उसमें व्यावहारिक जीवन में असाधारण काम कर दिखाने की सामर्थ्य तो है ही, इसके अतिरिक्त अतींद्रिय क्षमताओं का भी वही भंडार है।

ये दिव्य शक्तियाँ प्रायः प्रसुप्त स्थिति में रहती हैं। इन्हें जाग्रत किया जा सके तो वे हर क्षेत्र में चमत्कार दिखाती हैं। कारण शरीर समग्र सत्ता का अंतिम व तीसरा शरीर है। इसकी पृष्ठभूमि पर ही परब्रह्म की ब्रह्मांडीय चेतनधारा का अवतरण होता है। इसमें सबल संवेदनाएँ निवास करती हैं। सामान्यतया इनका दायरा घर-परिवार, मित्र-कुटुंब तक सीमित रहता है। जाग्रत होने की स्थिति में इनका अनंत विस्तार हो जाता है। महामानव-देवमानव इसी शरीर के विकास की सहज परिणति में रहते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में—गायत्री-साधना के अंतर्गत ध्यान-धारणा की प्रक्रिया द्वारा सविता के तेज के प्रवेश का, आत्मा को ब्रह्मतेज से ओत-प्रोत होने का दिव्य अनुभव होता है। पहले स्थूलशरीर में, पीछे सूक्ष्मशरीर में और अंत में कारणशरीर में सविता तेज के प्रवेश एवं विस्तार आधिपत्य की भाव-संवेदना उभारनी होती है।

सविता गायत्री महामंत्र के देवता हैं व गायत्री साधक के इष्ट-आराध्य। इनके स्थूलरूप के दर्शन प्रातःकालीन उदीयमान स्वर्णिम सूर्य के रूप में होते हैं। जब सविता की लालिमा क्षितिज से उदित होती है तो पूरा परिवेश ऊर्जा, स्फूर्ति एवं प्राणवायु से आप्लावित हो उठता है।

तब अंधकार का लोप हो जाता है, चहुँदिशाएँ प्रकाशित हो उठती हैं। पूरी प्रकृति में, इसके हर अंग-अवयव में चेतनता का संचार होता है। सृष्टि का हर घटक जैसे रात की तमिस्रा में गहन निद्रा के बाद अँगड़ाई लेता हुआ जागकर नए दिवस के लिए तैयार होता है।

गायत्रीसाधक के जीवन में सविता देवता का आगमन कुछ ऐसे ही महान जागरण की स्थिति को उत्पन्न करता है। गायत्रीसाधक इसी उदीयमान सूर्य की आत्मा सविता देवता का ध्यान करते हैं और तीनों शरीरों में इसके प्रवेश व प्रभाव के साथ आंतरिक रूपांतरण की धारणा को बलवती करते हैं।

स्थूलशरीर का प्रवेश द्वार नाभिकेंद्र, अग्निचक्र रहता है। इस केंद्र में सविता देवता के प्रवेश का, समस्त शरीर में उनका प्रकाश सुविस्तृत हो जाने का ध्यान करना होता है। अनुभव होता है कि समस्त स्थूलशरीर अग्निपिंड बन गया, अग्निपुंज हो गया।

यह अनुभव जितना ही प्रखर होता है, उतना ही अपने में असीम आत्मबल के उभरने और सामर्थ्य से ओत-प्रोत होने का भान होता है। स्थूलशरीर में सविता देवता की ऊर्जा ओजस् शक्ति बनकर प्रवेश करती है। इसे बलिष्ठता, कर्मनिष्ठा एवं साहसिकता के रूप में अनुभव किया जा सकता है।

तब लगता है यह विशेषताएँ सविता देवता के स्थूलशरीर में प्रवेश के साथ उठती-उमड़ती चली आ रही हैं। शरीर की स्थिति कर्मयोग-साधना में ढलने योग्य बन रही है। उससे सत्कर्म ही बन पड़ेंगे। क्रियाक्षेत्र में घुसी हुई दुष्प्रवृत्तियाँ उस दिव्य ऊर्जा के अवतरण से सहज ही जल-भुनकर नष्ट हो रही हैं तथा संयम-सदाचार एवं पवित्रता का संचार हो रहा है।

दोनों भौंहों के मध्य आज्ञाचक्र, तृतीय नेत्र-सूर्य चक्र से सविता देवता का सूक्ष्मशरीर में प्रवेश होता है, जिसके साथ ही मस्तिष्क-क्षेत्र में, कण-कण में दिव्य ज्योति का समावेश हो रहा है और पूरा मनःक्षेत्र आलोकमय, मन की कल्पनाशक्ति, बुद्धि की निर्णयशक्ति, चित्त की आदतें, अहं के संस्कार सभी अग्निमय, ज्योतिर्मय, आलोकमय हो रहे हैं।

सूक्ष्मशरीर को सविता देवता के अनुग्रह, अनुदान तेजस् शक्ति के रूप में उपलब्ध हो रहे हैं। तेजस् की प्रतिक्रिया विवेकशीलता, दूरदर्शिता, ऋतंभरा प्रज्ञा के रूप में विकसित हो रही है। इस ध्यान-धारणा को सूक्ष्मशरीर के शक्ति संवर्द्धन में प्रयुक्त किया जाता है।

हृदय स्थान, ब्रह्मचक्र कारणशरीर का प्रवेश द्वार है। सविता देवता की ऊर्जा का प्रवेश कारण शरीर में, उस अग्नि ऊष्मा के विस्तार, आत्मसत्ता में अग्निपुंज होने की अनुभूति के रूप में होता है, जिसके साथ कारणशरीर को सविता देवता का वरदान, ब्रह्मतेजस्, आत्मबल-ब्रह्मबल के रूप में मिल रहा है।

इस उपलब्धि की प्रतिक्रिया, श्रद्धा-श्रेष्ठता के प्रति असीम प्यार, भक्ति, करुणा, उदारता, आत्मीयता, सेवा-भावना, शांति-प्रसन्नता, प्रफुल्लता, उल्लास, संतोष जैसे सद्गुणों के रूप में हो रही है। इन अनुभूतियों का कारण शरीर पर सविता देवता का आधिपत्य होने के फलस्वरूप इन दिव्य वरदानों के मिलने का अनुभव किया जाता है। लगता है कि कारणशरीर ब्रह्मतेज से ओत-प्रोत होता चला जाता है, उसमें ऋषिस्तर की विभूतियाँ उठ व उभर रही हैं।

इस तरह गायत्री महामंत्र के जप के साथ ध्यान-धारणा की प्रक्रिया तीनों शरीरों के जागरण एवं विकास के रूप में होती है। सविता के दिव्य आलोक का अवतरण स्थूलशरीर में ओजस्, सूक्ष्म शरीर में तेजस् और कारणशरीर में वर्चस् के रूप में हो रहा है। व्यक्तित्व श्रद्धा, प्रज्ञा एवं निष्ठा के त्रिविध अनुदानों के साथ अनुगृहीत हो रहा है व निम्न प्रकृति के रूपांतरण के साथ नर-पशु से नर-मानव बनने की प्रक्रिया घटित हो रही है व साधक नैष्ठिक साधना-समर्पण एवं भक्ति के बल पर नर-से-नारायण व मानव-से-महामानव-देवमानव बनने के मार्ग पर अग्रसर हो रहा है। ❑

ऐसे हुआ कृष्ण प्रियदास को स्वरूप-साक्षात्कार

कृष्ण प्रियदास पंद्रह वर्ष के थे, तभी उनके माता-पिता स्वर्ग सिधार गए। कृष्ण प्रियदास को अपने माता-पिता की बहुत याद आती और वे उन्हें याद करके फूट-फूटकर रो पड़ते। किसी काम में उनका मन नहीं लगता। माता-पिता के न रहने के कारण वे स्वयं को अनाथ समझ सोते समय भी विलाप करने लगते और उसी मनोदशा में प्राय: निद्रा में चले जाते।

उस दिन श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पावन पर्व था। उनके गाँव के लोग गाँव के कृष्ण मंदिर में भगवान की पूजा व दर्शन को जा रहे थे। गाँव के लोगों को मंदिर जाते देख कृष्ण प्रियदास को बीते दिनों की याद हो आई, जब वे जन्माष्टमी के दिन अपने माता-पिता के साथ भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन करने मंदिर गए थे; क्योंकि भगवान कृष्ण तो कृष्ण प्रियदास के पिता श्यामशरणदास के भी आराध्यदेव थे।

भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनुपम अनुराग के कारण ही उन्होंने अपने पुत्र का नाम कृष्ण प्रियदास रखा था। श्यामशरणदास नित्य भगवान श्रीकृष्ण की पूजा-उपासना किया करते थे, त्रिकाल संध्यावंदन करते थे, अग्निहोत्र करते थे, शास्त्रों का स्वाध्याय करते थे और एकादशी व्रत का निष्ठापूर्वक पालन किया करते थे।

साथ ही वे पूरी निष्ठा एवं ईमानदारी से गृहस्थ जीवन की जिम्मेदारियों का निर्वहन भी किया करते थे। लोकव्यवहार में वे सदा सच्चाई व ईमानदारी का पालन करते थे।

आज के दिन सहसा कृष्ण प्रियदास को अपने माता-पिता की याद हो आई; क्योंकि उनके घर में कृष्ण भगवान की नित्य पूजा तो होती ही थी व जन्माष्टमी के दिन उनके पिता बड़ी धूम-धाम से भगवान श्रीकृष्ण की भी पूजा करते थे।

उस दिन वे अपनी नियमित पूजा-उपासना के साथ दिन भर निराहार रहते एवं मध्यरात्रि 12 बजे श्रीकृष्ण भगवान के प्राकट्य का महोत्सव मनाते थे और बालक कृष्ण प्रिय भी उस दिन अपने माता-पिता के साथ भगवान श्रीकृष्ण की पूजा, आरती आदि में भाग लेकर स्वयं को आनंदित महसूस करते थे। माता-पिता की मृत्यु के बाद कृष्ण प्रियदास के लिए यह पहली जन्माष्टमी थी। उन्हें अपने घर में मनाए जाने वाले कृष्ण जन्माष्टमी महोत्सव की बहुत याद आ रही थी।

वे उस कक्ष में गए, जहाँ भगवान श्रीकृष्ण की एक मनोहर सुंदर अष्टधातु की मूर्ति रखी थी और जहाँ बैठकर उनके माता-पिता नित्य भगवान की पूजा, उपासना, भगवद्ध्यान, आरती, अग्निहोत्र, स्वाध्याय आदि किया करते थे। कृष्ण प्रियदास ने उस कमरे की पुरजोर सफाई की, साज-सज्जा की, फर्श की गौ के गोबर से लिपाई की, पूजास्थल पर रखे भगवान श्रीकृष्ण की मूर्ति की साफ-सफाई की, उन्हें सुंदर वस्त्र पहनाए, वहाँ कुशा के आसन पर बैठकर भगवान श्रीकृष्ण का विशेष शृंगार किया, घी के दिए जलाए, भगवान को जल, अक्षत, गंध, धूप, दीप, नैवेद्य आदि अर्पित किए एवं यज्ञ-अग्निहोत्र के द्वारा भगवान श्रीकृष्ण को विशेष

आहुतियाँ समर्पित कीं तथा अंत में विशेष मंत्रों के साथ भगवान की स्तुति एवं आरती की।

उन्हें स्वाध्याय करते-करते रात्रि के दस बज गए और तब वे गाँव के कृष्ण मंदिर में जाकर भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन-पूजन करके वहाँ जन्माष्टमी के अवसर पर आयोजित विशेष स्तुति पाठ व भजन-गायन में सम्मिलित होकर आनंदित हुए। रात्रि के 12 बजे भगवान श्रीकृष्ण का प्राकट्य महोत्सव प्रारंभ हुआ। वहाँ उपस्थित हजारों लोग ढोल-मृदंग की थाप पर नाच उठे।

भगवान की विशेष आरती हुई और प्रसाद पाकर सभी लोग घर लौट आए, पर कृष्ण प्रियदास अभी भी मंदिर में बैठकर भगवान की मूर्ति निहार रहे थे, मानो वे अपनी आँखों में भगवान की सुंदर मनोहर छवि को अपने हृदय में हमेशा-हमेशा के लिए उतार लेना चाहते हों। उसी भावदशा में वे ब्राह्ममुहूर्त तक भगवान को अपलक नेत्रों से निहारते रहे और आह्लादित होते रहे।

सुबह छह बजे तक वे उसी भावदशा में वहाँ बैठे रहे तत्पश्चात घर आकर स्नान-ध्यान के पश्चात उन्होंने भगवान का पूजन कर मंदिर से प्राप्त भगवान का विशेष प्रसाद ग्रहण किया। तत्पश्चात वे विश्राम करने लगे, तभी उनके मन में नित्य भगवद्उपासना एवं वृंदावन धाम जाकर भगवान के दर्शन करने का भाव-संकल्प जाग्रत हुआ।

उस दिन से वे अब अपने पिता की तरह ही नित्य भगवद्उपासना, ध्यान, अग्निहोत्र, स्वाध्याय, सत्संग, गोसेवा आदि साधनात्मक क्रियाएँ करने लगे। फिर तो उन्हें भगवद्उपासना, भगवद्ध्यान की ऐसी धुन समायी की जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति तीनों अवस्थाओं में वे पलभर के लिए भी भगवद्स्मरण से विस्मृत नहीं हो पाते थे।

अचानक एक दिन वे भगवत्प्रेरणा से वृंदावन धाम पहुँच गए। उन्होंने अपने आराध्यदेव, बिहारी जी के दर्शन किए और भगवत्प्रेरणा से वृंदावन धाम दर्शन करके घर लौट आए। नित्य भगवद्उपासना के प्रभाव से उनमें वैराग्य की भावना बलवती होती गई।

यद्यपि रिश्तेदारों के कहने पर पच्चीस वर्ष की आयु में एक सुकन्या से विवाह कर गृहस्थ आश्रम में उन्होंने प्रवेश किया, पर उनके मन में श्रीकृष्णचंद्र भगवान इस कदर रच-बस गए थे कि वे संसार में रहते हुए भी संसार से विरक्त ही रहा करते।

भावावेश में सदा उनकी सहज समाधि-सी लगी रहती थी। प्रिया-प्रियतम श्रीराधा-कृष्ण के सौंदर्य और माधुर्य के महासागर में वे सदैव ही डूबे रहते थे। अपने आप को पूर्णतः भगवान को अर्पित कर देने के कारण वे कर्म करके भी अकर्त्ता भाव में रहने लगे। देह में रहते हुए भी वे विदेह भाव में रहने लगे।

हमारे जीवन के क्रियाकलाप के पीछे उसके प्रयोजन को कभी कोई ढूँढ़ना चाहे तो उसे इतना ही जान लेना पर्याप्त है कि संत और सज्जनों की सद्भावना और सत्प्रवृत्तियों का जितने क्षण स्मरण-दर्शन होता रहा, उतने समय चैन की साँस ली और जब जनमानस की व्यथा-वेदनाओं को सामने खड़ा पाया तो अपनी निज की पीड़ा से अधिक कष्ट अनुभव हुआ। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

गृहस्थाश्रम में रहते हुए, गृहस्थाश्रम की समस्त जिम्मेदारियों का पालन करते हुए सच्चे मन से नित्य भगवद्ध्यान के फलस्वरूप भगवत्कृपा से उन्हें स्वरूप-साक्षात्कार हो गया। स्वरूप-साक्षात्कार से उपजे परमानंद के निज बोध से वे निहाल हो गए और अपने सत्संग से औरों के जीवन को भी निहाल करते रहे, आलोकित करते रहे और इस प्रकार वे कृष्ण प्रियदास जी के रूप में पूज्य बन गए। ❑

जीवन में स्वर्ग का अवतरण

स्वर्ग और नरक एक परिकल्पना है। हमारे स्वयं के कर्म ही हमारे स्वर्ग और नरक की सृष्टि करते हैं। संसार से अलग कोई स्वर्ग अथवा नरक है, इसका अनुसंधान करने से कहीं अच्छा है कि हम अपनी इस धरती पर विद्यमान स्वर्ग-नरक को पहचानें और स्वर्ग पाने अथवा नरक से बचने का प्रयास करें।

सुख-शांति, आनंद-मंगल, कुशलक्षेम तथा पुण्य प्रकाश की परिस्थिति ही स्वर्ग है। इस स्थिति में मनुष्य का मन प्रसन्न, शरीर स्वस्थ तथा आत्मा आनंदित रहा करती है। वह सतत उन्नति करता है। वह सफलताओं की उपलब्धि पाकर संसार में पुण्य प्रताप के बल पर कीर्तिमान होकर अमर हो जाता है।

भौतिक शरीर में प्रसन्न परिस्थितियों के बीच निवास करना ही स्वर्गीय भोग है और अंत में यहाँ शरीर से निर्लिप्त होकर अमरत्व पा लेना स्वर्ग का सुखद परिणाम है। मनुष्य एक जीवन है और जीवन का अर्थ है—स्वास्थ्य। स्वास्थ्य स्वर्ग का प्रथम एवं मूलभूत सोपान है। स्वस्थ शरीर, प्रसन्न मन और आनंदित आत्मा की त्रिवेणी ही सच्चा स्वर्ग है।

शरीर हृष्ट-पुष्ट एवं बलिष्ठ है तो मनुष्य धरती को चीरकर सुख का स्रोत निकाल सकता है, आवश्यकतानुसार कठोर परिश्रम कर सकता है। क्लांति, अशांति, अनिद्रा अथवा अजीर्ण उसके निकट नहीं आ सकते। निराशा एवं चिंता की परिस्थिति उसे विचलित नहीं कर सकती। स्वास्थ्य श्रम से उद्दीप्त उसकी क्षुधा साधारण अन्न को पचाकर उसे परम तृप्ति प्रदान करने में समर्थ रहती है, जिससे उसे संतोष होता है।

तब लिप्सा एवं लोलुपता से रक्षा होगी। स्वस्थ शरीर ऋतुओं का आनंद, प्रकृति का सौंदर्य अनुभूत कराकर स्वर्गीय सुख ही प्रदान करता है। जलवायु का परिवर्तन उस पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डाल पाता। स्वस्थ मनुष्य सदैव प्रसन्न एवं प्रमुदित रहा करता है। व्यग्रता-विवशता उसके पास होकर नहीं गुजरते। मनुष्य की मूल नीरोग अवस्था को ही स्वर्गीय स्थिति कहा जा सकता है।

पुष्ट एवं बलिष्ठ व्यक्ति निर्द्वंद्व रहता है। उसको न तो किसी शत्रु से भय होता है और न किसी संघर्ष के प्रति चिंता रहती है। स्वस्थ मनुष्य का स्वभाव सहज रूप से मधुर एवं सौजन्यपूर्ण रहता है। अक्रोध के कारण वह बहुधा अजातशत्रु ही रहता है तथापि यदि कोई अकारण द्वेषी दुष्ट उससे बैर बाँधता भी है तो वह उससे हर प्रकार निपट लेने की सामर्थ्य रखता है। उसे शंका अथवा भय नहीं रहता है। अभयता स्वर्ग की एक उत्कृष्ट अनुभूति है और स्वस्थ व्यक्ति उसका सहज ही योग्य अधिकारी होता है।

मन को ईर्ष्या, द्वेष, कलह, क्लेश तथा कामनाओं के कलुष से बचाना चाहिए। सदाचार, सद्भाव से उसे उज्ज्वल एवं उन्नत बनाना जरूरी है। प्रसन्न वातावरण के बीच श्रेष्ठ व्यक्तियों का सान्निध्य ढूँढ़ना चाहिए। क्रोध और संकीर्णता की सीमा तोड़कर स्वर्गीय क्षितिज में विस्तृत होना चाहिए। शुभ कल्पनाओं, सद्भावनाओं एवं शिव संकल्पों से इसे संपन्न बनाने से हमारा मन हमारे लिए प्रत्यक्ष स्वर्ग ही बन जाएगा। पुण्य प्रयत्नों से प्रसन्न किया हुआ कुंठारहित मन स्वर्ग एवं वैकुंठ धाम की परिस्थिति उत्पन्न कर देता है।

सत्संग, स्वाध्याय, चिंतन, मनन तथा निदिध्यासन से आत्मा प्रबुद्ध होती है। उस पर पड़े कुसंस्कारों के आवरण पुण्यकर्मों से जल जाते हैं। साथ ही हमें परोपकार एवं परमार्थ में आस्था रखना चाहिए। इस प्रकार हमारी बुद्ध एवं प्रबुद्ध आत्मा अपने भीतर छिपे शत-शत स्वर्गों को हमारे लिए प्रत्यक्ष एवं उपलक्ष्य बना देती है।

स्वर्ग का दूसरा सोपान है—परिवार। परिवार में प्रेम का संचार आवश्यक है। श्रम एवं सहनशीलता के बल पर कलह-क्लेश पास नहीं भटकते। अपने त्याग के उदाहरण से परिवार के सदस्यों में त्याग-भावना जगाकर शिक्षा का प्रसार करना चाहिए। संतोष एवं मितव्ययिता का गुण सीखना और सिखाना चाहिए। हर छोटे-बड़े के बीच सहमति एवं सम्मति रखना चाहिए।

पत्नीव्रत धर्म के साथ गृहस्थ का हर उचित कर्त्तव्य निभाना चाहिए। हर मूल आवश्यकता की पूर्ति करके प्रत्येक कृत्रिम आवश्यकता को दूर भगाना चाहिए। परिवार की सुख-शांति के लिए अबाध श्रम करना और परिवार का पालन पवित्र कमाई से करना ही स्वर्ग है। झूठ, प्रपंच तथा छल-कपट की कमाई के अन्न से बच्चों के संस्कार नहीं बिगाड़ना चाहिए। इस प्रकार उत्पन्न किया हुआ पारिवारिक सुख पृथ्वी पर स्वर्ग है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह यदि समाज की उपेक्षा करके अपना स्वर्ग अलग से बसाना चाहे तो यह उसके लिए कठिन भी होगा और अनुचित भी। हमारे पास सुख-सुविधाएँ हैं और हम यदि उनका केवल अपने परिवार के सदस्यों के साथ ही उपभोग करते रहते हैं, व अपने पड़ोस में बसे परिवार को पीड़ित होता देखते रहते हैं, तो हमारा वह स्वर्ग पतित हो जाएगा। यथासाध्य समाज के साथ ही मिल-बाँटकर उपभोग करने पर साधन एवं सुविधाएँ मनुष्य को स्वर्गीय आनंद देती हैं।

हमारा ध्येय है कि राष्ट्र भी हमारा परिवार है। हम सब एक राष्ट्र भी हैं। हमारा एक राष्ट्रीय अस्तित्व भी है। हमारी एक मातृभूमि तथा देश भी है, जिसके प्रति हमारे कर्त्तव्य निश्चित हैं। उन कर्त्तव्यों का पालन न करने का अर्थ अपने शारीरिक, पारिवारिक तथा सामाजिक स्वर्ग-सुख को कलंकित करना है।

मातृभूमि की रक्षा और उसकी उन्नति के लिए त्याग-बलिदान तथा उसके गौरव के लिए सदाचार का पालन करना स्वर्गीय सुख उपलब्ध करने का एक सात्त्विक उपाय है। राष्ट्र की सेवा एक साधना है। राष्ट्रहित कार्यक्रमों में ईमानदारी के साथ अपना अंशदान करना एक पवित्र साधन है, जिसका फल एक स्वर्गीय संतोष ही होता है।

साथ ही मानवता की पुकार को अनसुनी नहीं करना चाहिए। संपूर्ण मानवता में आत्मीयता की भावना रखना ही ईश्वर के प्रधान अंश मनुष्य के लिए शोभनीय है। मानवता का दुःख दूर करने के लिए यथासंभव उसकी सेवा करने और उसके लिए कष्ट उठाने वाले महापुरुष जीवनभर स्वर्गीय अनुभूति का आनंद लेकर युगों के लिए यशस्वी शरीर से अमर हो जाते हैं।

धरती का स्वर्ग पाना किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन नहीं है। संयम, सदाचार तथा सद्भावना रखने वाला सदाशयी व्यक्ति निश्चित ही इस प्रत्यक्ष एवं अक्षय स्वर्ग को प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक को इस स्वर्ग को पाने का प्रयत्न करना चाहिए और प्रयत्न कर कम-से-कम उसके एक-दो सोपानों पर तो चढ़ ही जाना चाहिए।

इस प्रकार सत्कर्म स्वर्ग की अनुभूति प्रदान करते हैं और दुष्कर्म व दुर्भावना का परिणाम नारकीय यंत्रणा से कम नहीं होता है। अतः सद्भाव, सद्विचार एवं सत्कर्म के माध्यम से अपने परिवार, समाज एवं राष्ट्र में स्वर्गीय वातावरण बना सकते हैं और तभी स्वर्ग का अवतरण संभव है। ❑

युग विभीषिका का समुचित एवं समग्र समाधान

इस सदी के तीसरे दशक में खड़ी विश्व मानवता के समक्ष तीसरा विश्वयुद्ध दस्तक दे रहा है। कारण जो भी हों, पर सच्चाई यह है कि अब जरा-सी असावधानी और नासमझी संपूर्ण मानव जाति को समाप्त करने के लिए पर्याप्त है। ऐसे में आवश्यकता है कि इस दुर्भाग्यपूर्ण परिस्थिति से मानव जाति को उबार लेने वाले उपायों को खोजा जाए।

प्रत्यक्षवादी, भोगवादी और भौतिकवादी संस्कृति के पोषक लोग इस विषम स्थिति और आसन्न संकट का जैसा भी मूल्यांकन कर रहे हों, करें! अवश्य करें और हो सके तो त्वरित समाधान के लिए भी आगे आएँ, परंतु हमारी दृष्टि में इस संकट के निवारण का उपाय औरों की सोच से सर्वथा भिन्न है।

यह संकट किसी एक व्यक्ति, एक समाज अथवा राष्ट्र ने उत्पन्न नहीं किया है और न ही एकाएक ही यह आ खड़ा हुआ है। यह तो स्पष्ट रूप से समूची विश्वमानवता के भटकाव और विगत कई दशकों से चल रही विकास और वर्चस्व की दिशाहीन दौड़ का परिणाम है। इस आत्मघाती परिस्थिति के लिए प्रत्येक व्यक्ति, समाज और राष्ट्र समान रूप से सहभागी हैं।

परमपूज्य गुरुदेव ने अपने विचारों में सैकड़ों स्थान पर ऐसी परिस्थितियों से बचने के लिए आगाह किया है और यदि संकट आ ही जाए तो उससे बच निकलकर सार्थक दिशा में लौट जाने का मार्ग भी सुझाया है।

युगद्रष्टा के रूप में उनके साहित्य में अनेकों स्थान पर अलग-अलग संदर्भों में, तीसरे विश्वयुद्ध के मुहाने पर खड़ी विश्वमानवता की चिंता और इसे बचाने की व्याकुलता और उपायों को देखा जा सकता है। युगऋषि के रूप में पूज्य गुरुदेव के विचार इस सदी के सबसे महान चिंतन को प्रस्तुत करते हैं।

इसमें वर्तमान का समुचित और समग्र समाधान मौजूद है और ऐसे उपाय भी जिन्हें अपनाकर विश्वमानवता पर छाए संकटों का त्वरित समाधान प्राप्त किया जा सके। युग विभीषिका की इस घड़ी में हम सभी की यह सम्मिलित जिम्मेदारी है कि समय रहते पूज्यवर के विचारों से संपूर्ण विश्वमानवता को जोड़ने का पुनीत कार्य संपन्न करें। सब मिलकर संकटग्रस्त विश्व समाज से आह्वान करें कि मानवता के सर्वविधि त्राण, संरक्षण और कल्याण की उत्कृष्टतम विचारणा हमारे गुरुदेव के चिंतन में मौजूद है।

पूज्यवर के विचारों का अवगाहन करने और कराने का यह अवसर युगदायित्व के समय की पुकार के रूप में प्रस्तुत है। समस्त संसार के समक्ष खड़े होकर सच्चे युगनायक के प्रतिनिधि बनकर यह उद्घोषणा करने का क्षण है कि इक्कीसवीं सदी- उज्ज्वल भविष्य की सौगात लेकर अग्रसर हुई है।

इस सदी में मानव अस्तित्व को निगल जाने वाली त्रासदी का घटित हो जाना कदापि स्वीकार्य नहीं है। मानव मात्र में देवत्व का-दिव्यता का जागरण और समूची धरा पर स्वर्गीय वातावरण की अवधारणा को साकार बनाने में समर्थ पूज्यवर का जीवन दर्शन युग की समस्त समस्याओं के समाधान का केंद्रबिंदु है।

वर्तमान की समूल समस्याओं का सार्थक निदान और समाधान पूज्यवर के उस आधारभूत सिद्धांत में मौजूद है, जिसे उन्होंने नवयुग के निर्माण की धुरी माना है।

इस सिद्धांत के चार आदर्श हैं—एकता, समता, शुचिता और ममता। इन चारों में व्यक्ति, समाज, राष्ट्र और विश्व अर्थात संपूर्ण मानवजाति के संकटों का निवारण और सार्थक दिशा प्रदान करने वाला युगबोधरूपी चिंतन समाहित है। युगतीर्थ शांतिकुंज को इस चिंतन के साकार रूप में विकसित किया गया है। चारों आदर्शों के अनुरूप विनिर्मित मानव समाज एवं विश्वमानवता का स्वरूप कैसा होगा, इसी को एक मॉडल रूप में प्रत्यक्ष उदाहरण बनाकर उन्होंने दुनिया के समक्ष प्रस्तुत किया है।

विश्वमानवता में शांति, स्थिरता और सामंजस्यपूर्ण जीवन के लिए पूज्य गुरुदेव का पहला आदर्श है—एकता। एकता का तात्पर्य है—एक कुटुंब की तरह मिल-जुलकर रहना, मिल-बाँटकर खाना, अपनी खुशी दूसरों में बाँटना और दूसरों के दु:ख बँटा लेना। एक घर-परिवार में जैसे रहते हैं, वैसे ही मिलकर सहकारिता से रहना। आवश्यकता के अनुरूप साधन-संसाधनों का प्रयोग करना और सामर्थ्य के अनुरूप कार्य करना-श्रम करना।

औसत नागरिक के जीवनस्तर का मानदंड बनाए रखना और धन-संपदा को परिवार की संयुक्त संपत्ति के रूप में एकत्रित एवं उपयोग करना। ये महामंत्र की भाँति ऐसे जीवन सूत्र हैं, जिन्हें अपनाकर मानव जीवन के प्रत्येक स्तर पर एकता का आदर्श स्थापित किया जा सकता है। एकता का यह आदर्श प्राचीनकाल से देव संस्कृति के विकास एवं उत्थान का आधार रहा है। वैदिक ऋषियों ने सर्वप्रथम इसका उद्घोष करते हुए कहा है—

समानो मंत्रः समितिः समानी
समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

—ऋग्वेद, 10/191/3-4

अर्थात 'हमारी मंत्रणा में, समितियों में, विचारों में और चिंतन में समानता हो, आपस में सद्भावना हो, वैषम्य और दुर्भावना न हो। हमारे अभिप्रायों, हमारी भावनाओं (हृदयों) में और हमारे मनों में एकता की भावना बनी रहे, जिससे हमारी संगठित और सामूहिक शक्ति का विकास हो।'

पूज्यवर के अनुसार धर्म, संस्कृति, भाषा, प्रांत, जाति, समाज, राजनीति, शासन आदि के स्तर पर मनुष्यों में परस्पर जो विषमता और खाइयाँ बन गईं, उन्हें समाप्त करने में एकता का आदर्श ही कारगर उपाय है। एकता का भाव ही मनुष्य, मनुष्य के बीच प्रेम, आत्मीयता उत्पन्न कर सभी के अंत:करण में सद्भावना का संचार कर शांति और सौहार्द स्थापित कर सकता है।

समतारूपी दूसरा आदर्श मानवमात्र की आत्मिक प्रगति का मार्ग है। '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' का मंत्र इसी आदर्श को प्रकट करता है। वसुधैव कुटुम्बकम् यदि एकता का मंत्र है तो आत्मवत् सर्वभूतेषु समता का। समता अर्थात सबमें अपने को और अपने में सबको देखना। यह आदर्श प्राणिमात्र में एक ही आत्मतत्त्व के दर्शन करके समदृष्टि उत्पन्न करता है।

गुरुदेव के साहित्य में दिए गए नारे—'मानव मात्र एक समान, एक पिता की सब संतान' के पीछे भी यही मर्म सन्निहित है। असमानता की भावना ने मनुष्य जीवन को हर स्तर पर खंडित और संकीर्ण बना दिया है। जाति, प्रांत, धन, पद, प्रतिष्ठा जैसी अनेकों विसंगतियाँ चारों ओर दिखाई

देती हैं। ये मनुष्य मात्र के पारस्परिक स्नेह, भ्रातृत्व और सामंजस्य में सबसे बड़ी बाधाएँ हैं।

इससे उबरने का उपाय यही है कि '**अयं निजः परोवेति**' की संकीर्ण भावना से ऊपर उठकर '**उदार चरितानां तु**' की उक्ति को चरितार्थ किया जाए। उदार और विकसित हृदय में ही समता की भावना जन्म लेती है तथा त्याग, प्रेम, सेवा, समर्पण के उच्चस्तरीय जीवनमूल्यों से मानवता के चरित्र को सँवारती है।

तीसरा आदर्श है—शुचिता। इसका संबंध मनुष्य की आंतरिक उत्कृष्टता, चारित्रिक पवित्रता और सदाचरण से है। पूज्य गुरुदेव की मान्यता में भीतर की पवित्रता, दिव्यता व व्यापकता ही बाहर अभिव्यक्त होगी। व्यक्तिगत जीवन में प्रत्येक को आंतरिक चरित्र में पवित्रता और बाह्य आचरण में सज्जनता का मापदंड निर्धारित कर जीवन जीना चाहिए।

इन्हीं मापदंडों की अवहेलना-उपेक्षा से आज समूची मानव जाति का आंतरिक और बाह्य जीवन हजारों समस्याओं-संकटों से घिर गया है। हमारे ऋषियों ने शुचिता के आदर्श को आधार बनाकर ही मनुष्य मात्र के लिए दान, सेवा, प्रियवचन, शुभकामना, सत्यवचन, स्वाध्याय, स्वच्छता, संतोष आदि कर्त्तव्यों का उपदेश दिया है।

ये सभी कर्म अहं, क्रोध और घृणा की भावना से रहित होने चाहिए। इसके लिए गुरुदेव प्रत्येक कर्म में कर्त्तव्यपरायणता की भावना को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए इसी को मानव धर्म की संज्ञा देते हैं। मानव समाज के लिए शुचिता का आदर्श ही आंतरिक और बाह्य विकास एवं उन्नति का मूलमंत्र है।

चतुर्थ आदर्श 'ममता' के रूप में है। इसका तात्त्विक अर्थ है विश्व मानवता से निस्स्वार्थ प्रेम करना। ऋषि, मुनि, चिंतक, समाज-सुधारक, तपस्वी, योगी, संत, शहीद—इन सभी के व्यक्तित्व को 'ममता' का आदर्श ही सर्वोत्सर्ग के परम मूल्य से विभूषित करता है। प्यार, ममता, स्नेह, संवेदना, आत्मीयता, श्रद्धा—ये सब इसी आदर्श के पर्याय हैं, जो मनुष्य के जीवन में घुल-मिलकर स्वयं व्यक्ति तथा संपूर्ण मानवता में प्रसन्नता और आनंद की सृष्टि करता है।

प्रसन्नता वहीं दिखाई देती है, जहाँ संतुष्टि का भाव हो। संतुष्टि उन्हीं के हिस्से आती है, जिनमें देने की प्रबल इच्छा होती है। प्रेम सदैव देने के भाव में गतिशील होता है। देवत्व की गरिमा भी देने में है। पूज्य गुरुदेव भी अपने शिष्यों से कहते हैं कि 'दुनिया की सब बातें मान लेना, परंतु यदि कोई यह कहे कि कोई तुम्हें तुम्हारे गुरु से ज्यादा

अमृताय आप्यापमानः दिवि उप्तमानि श्रवांसि धिष्व।

अर्थात मनुष्य को मोक्ष की प्राप्ति के लिए उन्नति करते हुए श्रेष्ठ कर्म करने चाहिए।

प्यार करता है तो कभी मत मानना। हम सिर्फ और सिर्फ प्यार करते हैं, प्यार बाँटते हैं। प्यार ही हमारा मंत्र है।' उनके इन शब्दों में ममता का आदर्श ही साकार हुआ है। ममता से हृदय की संवेदना घनीभूत होती है और प्रेम तथा करुणा के महान जीवनमूल्य साकार होकर विश्वमानवता की पीड़ा का हरण कर लेते हैं।

परमपूज्य गुरुदेव का यह कालजयी चिंतन आज की परिस्थितियों में सार्थक समाधान लिए प्रस्तुत है। आवश्यकता है कि जनमानस को इससे अवगत कराएँ। इस चिंतन में समाहित मानवीय उत्थान के आदर्शों के प्रति विश्व समाज में जागृति उत्पन्न करें और अस्तित्व के संकट से जूझ रही मानवता को उज्ज्वल भविष्य के प्रति आश्वस्त करें। ❑

देवाधिदेव महादेव का स्वरूप

भगवान शिव संसार के समस्त मंगल का मूल हैं। यजुर्वेद 16/41 में उनकी स्तुति इस प्रकार की गई है—

नमः शंभवाय च मयोभवाय च
नमः शंकराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च॥

इस वैदिक ऋचा में परमात्मा को 'शिव', 'शंभू' और 'शंकर' नाम से नमन किया गया है। 'शिव' शब्द बहुत छोटा है, पर इसके अर्थ इसे गंभीर बना देते हैं। शिव का व्यावहारिक अर्थ है—कल्याणकारी। शंभू का भावार्थ है—मंगलदायक। शंकर का तात्पर्य है—आनंद का स्रोत। यद्यपि ये तीनों नाम भले ही भिन्न हों, लेकिन तीनों का संकेत कल्याणकारी, मंगलदायक, आनंदघन परमात्मा की ओर ही है।

वे देवाधिदेव महादेव, सबके अधिपति महेश्वर सदाशिव ही हैं, परंतु यह ध्यान रहे कि भगवान शिव त्रिदेवों के अंतर्गत रुद्र (रौद्र रूप वाले) नहीं हैं। भगवान शिव की इच्छा से प्रकट रजोगुण रूप धारण करने वाले ब्रह्मा, सत्त्वगुण रूप विष्णु एवं तमोगुण रूप रुद्र हैं, जो क्रमशः सृजन, रक्षण (पालन) तथा संहार का कार्य करते हैं।

ये तीनों वस्तुतः सदाशिव की ही अभिव्यक्ति हैं, इसलिए ये शिव से पृथक भी नहीं हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तात्त्विक दृष्टि से एक ही हैं। इनमें भेद करना अनुचित है। दार्शनिक मान्यता है कि ब्रह्मांड पंचतत्त्वों से बना है। ये पाँच तत्त्व हैं—जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु और आकाश। भगवान शिव पंचानन अर्थात पाँच मुख वाले हैं। शिवपुराण में इनके इसी पंचानन स्वरूप का ध्यान बताया गया है।

ये पाँच मुख ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात नाम से जाने जाते हैं। भगवान शिव के ऊर्ध्वमुख का नाम 'ईशान' है, जिसका दुग्ध जैसा वर्ण है। 'ईशान' आकाश तत्त्व के अधिपति हैं। ईशान का अर्थ सबके स्वामी है। ईशान पंचमूर्ति महादेव की क्रीड़ामूर्ति हैं। पूर्वमुख का नाम 'तत्पुरुष' है, जिसका वर्ण पीत (पीला) है। तत्पुरुष वायु तत्त्व के अधिपति हैं। तत्पुरुष तोमूर्ति हैं।

भगवान सदाशिव के दक्षिणी मुख को 'अघोर' कहा जाता है। यह नीलवर्ण (नीले रंग का) है। अघोर अग्नितत्त्व के अधिपति हैं। अघोर शिव जी की संहारकारी शक्ति है, जो भक्तों के संकटों को दूर करती है।

उत्तरी मुख का नाम वामदेव है, जो कृष्णवर्ण का है। वामदेव जल तत्त्व के अधिपति हैं। वामदेव विकारों का नाश करने वाले हैं, अतएव इनके आश्रय में जाने पर पंचविकार काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह नष्ट हो जाते हैं।

भगवान शंकर के पश्चिमी मुख को 'सद्योजात' कहा जाता है, जो श्वेतवर्ण का है। सद्योजात पृथ्वी तत्त्व के अधिपति हैं और बालक के समान परम स्वच्छ, शुद्ध और निर्विकार हैं। सद्योजात ज्ञानमूर्ति बनकर अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करके विशुद्ध ज्ञान को प्रकाशित कर देते हैं। पंचभूतों (पंचतत्त्वों) के अधिपति होने के कारण ये 'भूतनाथ' कहलाते हैं।

शिव-जगत् में पाँच का और भी महत्त्व है। रुद्राक्ष सामान्यतः पाँच मुख वाला ही होता है।

शिव-परिवार में भी पाँच सदस्य हैं—शिव, पार्वती, गणेश, कार्तिकेय, और नंदी।

शिव जी की उपासना पंचाक्षर मंत्र—'नमः शिवाय' द्वारा की जाती है। शिव काल (समय) के प्रवर्तक और नियंत्रक होने के कारण 'महाकाल' भी कहलाते हैं।

काल की गणना 'पंचांग' द्वारा होती है। काल के पाँच अंग—तिथि, वार, नक्षत्र, योग और क्षण शिव के ही अवयव हैं। शिव जी करुणासिंधु, भक्तवत्सल होने के कारण भक्त की भावना के वशीभूत होकर उसकी मनोकामना पूर्ण कर देते हैं, पर यह स्मरण रहे कि—**देवो भूत्वा जयेत् देवं** अर्थात अपने इष्टदेव की अर्चना करने के लिए पहले अपने आप को उनके अनुरूप बनाओ। इसलिए **शिवो भूत्वा शिवं यजेत्** को अपने आचरण में ढाल लें। शिवार्चन तभी सफल होगा, जब भक्त शिव के समान ही त्यागी, परोपकारी, संयमी, साधनाशील और सहिष्णु होगा।

श्रुतियों में कहा गया है कि शिव ही समस्त प्राणियों के अंतिम विश्राम के स्थान हैं। वेदों, पुराणों और उपनिषदों में शिव को ही सच्चिदानंदघन परब्रह्म कहा गया है। यही कारण है कि निर्गुण-निराकार शिवलिंग रूप तथा सगुण-साकार मूर्तिरूप, दोनों तरह से शिव जी का पूजन होता है। त्रिपुर का अर्थ है लोभ, मोह और अहंकार। मनुष्य के भीतर इन तीन विकारों का वध करने वाले त्रिपुरारी शिव की शक्ति का पुराणों में प्रतीकात्मक वर्णन अभिभूत करने वाला है।

जटाजूट में सुशोभित चंद्रमा, सिर से बहती गंगा की धार, हाथ में डमरू, नीला कंठ और तीन नेत्रों वाला दिव्य रूप किसके हृदय को आकर्षित न कर लेगा। भगवान शंकर का तीसरा नेत्र ज्ञानचक्षु है। यह विवेकशीलता का प्रतीक है। इस ज्ञानचक्षु की पलकें खुलते ही काम जलकर भस्म हो जाता है। यह विवेक अपना ऋषित्व स्थिर रखते हुए दुष्टता को उन्मुक्त रूप से नहीं विचरने देता है। अंततः उसका मान-मर्दन करके ही रहता है।

वस्तुतः यह तृतीय नेत्र स्रष्टा ने प्रत्येक व्यक्ति को दिया है। यदि यह तीसरा नेत्र खुल जाए तो सामान्य बीजरूपी मनुष्य की संभावनाएँ वटवृक्ष का आकार ले सकती हैं। शिव-सा शायद ही कोई संपन्न हो, पर वे संपन्नता के किसी भी साधन का अपने लिए प्रयोग नहीं करते हैं। हलाहल (विष) को गले में रोकने से वे नीलकंठ हो गए हैं अर्थात विश्वकल्याण के लिए विपरीत परिस्थितियों को तो स्वीकार किया, पर व्यक्तित्व पर उसका प्रभाव नहीं पड़ने दिया।

भगवान शिव को पशुपति कहा गया है। पशुत्व की परिधि में आने वाली दुर्भावनाओं और दुष्प्रवृत्तियों का नियंत्रण करना पशुपति का काम है। नर-पशु के रूप में रह रहा जीव जब कल्याणकर्त्ता शिव की शरण में आ जाता है, तो सहज ही उसकी पशुता का निराकरण हो जाता है।

शिव परिवार में मूषक का शत्रु सर्प, सर्प का शत्रु मयूर और मयूर एवं बैल का शत्रु सिंह शामिल हैं। इसके बावजूद परिवार में सामंजस्य बना रहता है। शिव परिवार विपरीत परिस्थितियों में सामंजस्य बनाए रखने का अनुपम संदेश भी देता है।

'वृष' का शाब्दिक अर्थ धर्म (जिसे हम धारण करते हैं अर्थात हमारे कर्त्तव्य) भी है। भगवान शंकर धर्म अर्थात कर्त्तव्यों के भी अधिपति हैं। शिव जी की आराधना में कर्मकांड की जटिलता नहीं, वरन भावना की प्रधानता है। वे अतिशीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं। इसी कारण वे आशुतोष कहलाते हैं।

जिस प्रकार हलाहल (विष) को पीकर उन्होंने देवताओं को संकट से बचाया और 'नीलकंठ' बन गए, उसी तरह उनके भक्तों को भी उनका अनुसरण करते हुए अपने कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए। शिवतत्त्व को जीवन में उतार लेना ही शिवत्व प्राप्त करना है और यही शिव होना है। हमारा लक्ष्य भी यही होना चाहिए। ❑

सच्चे भक्त को होती है सर्वत्र ब्रह्मभाव की अनुभूति

भगवद्दर्शन, भगवद्अनुभूति होने के बाद संत तुकाराम सर्वत्र ब्रह्म की अनुभूति, भगवद्अनुभूति पाते थे। वे जगत् को ब्रह्मभाव से ही देखा करते थे। वे हर प्राणी को ही ब्रह्मभाव, भगवद्भाव से देखा करते थे। इसको लेकर एक बहुत ही रोचक कथा-प्रसंग है। इंद्रायणी नदी के तट पर बैठकर तुकाराम प्राय: भजन, कीर्तन किया करते थे।

एक बार वे वहीं बैठकर भजन कर रहे थे, कि तभी उस नदी के पास के खेत में काम करने वाला किसान उनके पास आया और कहा—''महाराज! आप यहाँ अक्सर भजन, कीर्तन करने बैठते हो। मेरा खेत भी यहीं पास है। अगर आप यहाँ बैठे-बैठे खेत की निगरानी करें, तो मैं आपको बदले में बीस सेर ज्वार दे दूँगा।'' उसके अनुरोध करने पर संत तुकाराम नदी किनारे वाले उसके उस खेत की रखवाली करने को तैयार हो गए। उस खेत की फसल को पशु-पक्षी अक्सर बरबाद कर दिया करते थे।

संत तुकाराम पहले की तरह ही नदी किनारे बैठकर भगवान का भजन-कीर्तन करने लगे। वे हाथ से झाँझ बजाते और मुख से अभंग गाते। झाँझ और अभंग की आवाज सुनकर प्राय: पशु-पक्षी उस खेत में न आते, पर एक दिन जब उस खेत में लगी ज्वार की फसल कटने को थी और वह अभंग गाते-गाते भगवान के ध्यान में मग्न हो गए, तभी झाँझ और अभंग की आवाज बंद हो गई। आवाज न आने के कारण चिड़ियों को खुला खेत मिल गया। वे उस खेत में आ बैठीं और खेत चुगने लगीं।

थोड़ी देर में जब संत तुकाराम का ध्यान टूटा और वे पुन: झाँझ बजाते हुए अभंग गाने लगे, तभी उस आवाज को सुनकर खेत में दाने चुग रही चिड़ियाँ उड़ने लगीं। जब तुकाराम जी ने उन चिड़ियों को दाने चुगना छोड़कर उड़ते हुए देखा तो वे समझ गए कि उनके डर से ही चिड़ियाँ खेत से उड़ी हैं।

यह देखकर, यह सोचकर उन्हें खेद हुआ और उनके मुख से अभंग निकला कि 'पांडुरंग विट्ठल भगवान की कृपा का विश्वास तो तभी करना चाहिए, जबकि प्राणिमात्र एक-सा दिखाई दे। मुझसे शंका करने या डरने का किसी को कारण नहीं। चिड़ियों को भी नहीं। मुझे तो सर्वत्र मेरे पांडुरंग विट्ठल ही दिखते हैं, फिर इन चिड़ियों में भी तो पांडुरंग होंगे ही। तुकाराम जिसे-जिसे देखता है, उसे आप ही-सा (पांडुरंग विट्ठल-सा) समझता है।'

इस प्रकार संत तुकाराम के विचार में मग्न होते ही फिर से चिड़ियाँ खेत पर बैठने लगीं और दाना चुगने लगीं। उसी समय उस खेत का किसान भी वहाँ आ पहुँचा। उसने देखा कि चिड़ियाँ खेत चुग रही हैं और पास में बैठे विचार में मग्न तुकाराम उन चिड़ियों को बड़े प्रेम से देख रहे हैं, पर उन्हें खेत से भगा नहीं रहे।

उस किसान ने संत तुकाराम के सामने अपनी नाराजगी प्रकट की। अब उसने अपने कहे अनुसार संत तुकाराम को 20 सेर ज्वार देने से बचने के बहाने को ढूँढ़ लिया था। तुकाराम को 20 सेर ज्वार देना नहीं पड़े, इस हेतु वह गाँव के पंचों के पास गया और बोला—''तुकाराम जी के सामने ही

चिड़ियाँ खेत चुगती रहीं और तुकाराम उन्हें भगाने के बजाय सिर्फ चिड़ियों को देखते रहे और चिड़ियाँ खेत चुगती रहीं।

"दु:खी हो उसने कहा—'मेरा लगभग सौ मन का नुकसान हुआ है। अब क्या किया जाए?' पँचों ने खेत जाकर ज्वार कटवाई और उसे तौलवाया तो लगभग डेढ़ सौ मन दाना निकला, जो कि पहले की तुलना में कहीं अधिक था।"

किसान का झूठ पकड़ा गया। अब वह नुकसान के आधार पर ज्वार देने से इनकार कैसे कर सकता था? अस्तु पंचों ने यह निर्णय लिया कि सौ मन ज्वार उस किसान को दी जाए और बाकी संत तुकाराम के घर पहुँचाई जाए। बोरियाँ भरकर संत तुकाराम के घर भेजी गईं।

संत तुकाराम की पत्नी जिजाई बोरियाँ देखकर खुश हुई, पर तुकाराम जी अड़ बैठे और बोले—"बीस सेर से अधिक दाना मुझसे नहीं लिया जाएगा; क्योंकि उस किसान से बीस सेर के लिए ही बात हुई थी।" इस पर जिजाई चिल्लाने लगी कि बोरी घर आती है, पर तो भी ये कभी बच्चों को सुख से खाने न देंगे।

उसने चिढ़ते हुए आगे कहा—"ये तो लोगों का ही घर भरेंगे और अपने घर में आई बोरियाँ भी नहीं रखने देंगे।" आखिरकार पंचों की राय और संत तुकाराम की इच्छानुसार कुछ दाना ब्राह्मणों को बाँटा गया और बाकी दाने की कीमत से मंदिर की मरम्मत कराई गई। ऐसी थी संत तुकाराम की भगवद्भक्ति।

भगवद्दृष्टि, आत्मदृष्टिसंपन्न भक्तों व साधकों का जीवन संत तुकाराम की भाँति ही निश्छल, निर्मल और निर्विकार होता है। ❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ईमेल-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

संत रविदास की भगवद्भक्ति

संत रविदास की भगवद्भक्ति अनुपम थी, अद्वितीय थी, उच्चस्तरीय थी। जन्मजात प्रवृत्ति के कारण भगवद्भक्ति की ओर उनका नैसर्गिक झुकाव था, लगाव था, आकर्षण था। भगवद्भक्ति के नित्य क्रम में वे अपने मन को सावधान करते हुए कहा करते थे कि 'रे मन, जीवन का एक-एक दिन व्यर्थ जा रहा है। मार्ग लंबा है और समय थोड़ा है, पर तू तो इससे बेखबर है। तू शीघ्र ही चल दे, भजन प्रारंभ कर दे; क्योंकि मानव जन्म दुर्लभ है।

वे नित्य परमात्मा से प्रार्थना करते और आर्त्तभाव से उन्हें पुकारते हुए कहते—''हे प्रभु! मैं कुएँ के मेंढ़क की भाँति हूँ। मेरा मन विषयों में फँसा है। मुझे कुछ सूझता नहीं। पर हे परमात्मा! तू तो अंतर्यामी है, तू मुझे सुमति दे। मेरी नाव पापों से भरी है। भवसागर अपार व्यथाओं से भरा है। बिना तेरे सहारे के उसे पार कर पाना कठिन है। मैं शक्तिहीन और हताश हूँ। तेरे चरण छोड़कर मैं और कहाँ जाऊँ। तू मुझे संबल दे। तू भक्तवत्सल है और मैं शरणागत हूँ। मैं माया के हाथ बिक गया था, तेरा नाम भूल गया था। तू अब मुझे अपनी शरण में ले ले। अब मुझे दूसरा कोई आसरा नहीं, सहारा नहीं। बस, तू ही एक है।''

परमात्मा का नाम सुमिरन करते-करते उनका मन अंततः परमात्मा से साक्षात्कार को व्याकुल हो उठा, आतुर हो उठा और उसी भावदशा में भावविह्वल हो वे बेसुध हो जाते। वे भावविह्वल हो परमात्मा से दर्शन देने की प्रार्थना करते हुए कहते—''मैं तेरे दर्शन के बिना जी नहीं सकता। मुझे संसार से कोई आशा रही नहीं। तेरे सिवा मेरा कोई साथी नहीं, सहारा नहीं, आसरा नहीं। बस, एक तू-ही-तू है, जिसे मैं अपना कह सकूँ। सारे-सगे संबंधी विमुख हो गए, सभी सयाने हैं, मैं ही मूर्ख हूँ। मुझे शरण दो भगवन्! मुझे अब दर्शन दो भगवन्! अब मुझे केवल तेरा ही सहारा है।''

वे पश्चात्ताप भी करते जाते कि 'मेरे कर्म में कुछ कमी आ गई होगी, पर फिर भी तू तो दयालु है, तू दया करके, मुझे अंग लगाकर सुहागिन होने का वरदान दे दे।' वे परमात्मा से अधिकारपूर्वक कहते—''मैं जन्म-जन्म से वियोगी, तेरे दर्शन को प्यासा हूँ। बहुत जन्म से तुझसे बिछड़े रहा, पर अबकी बार मैं तुझे पाये बिना छोड़ नहीं सकता।'' इस प्रकार भगवान के प्रति उनकी प्रीति दिनोंदिन बढ़ती गई, गहराती गई और वे नित्य विरह की अग्नि में जलने लगे।

वे परमात्मा से कहा करते—''मैं नित्य चिंता में हूँ, पर आप तो चिंतामणि हैं। फिर आप मेरी चिंता क्यों नहीं करते। आपको क्या मेरे ऊपर दया नहीं आती। आपकी दया के बिना, आपकी कृपा के बिना भला मेरी आशा, तृष्णा कैसे छूट सकती है। मैं अब तक माया में बँधकर सांसारिक विषयों में लिप्त रहा और राम-नाम नहीं भजा, पर तू तो सब तरह से समर्थ है। तेरे केवल नामस्मरण से ही, नामदेव, कबीर, त्रिलोचन, धन्ना, सदन और सैन आदि अगणित भक्त पार हो गए। इसलिए तू मुझे भी उबार सकता है, तार सकता है, पार करा सकता है। तू ही मेरे सर पर प्रेम (भक्ति) का ताज रख सकता है।''

भगवान के प्रति प्रेम यदि सच्चा हो, प्रगाढ़ हो तो वह कभी निष्फल नहीं जाता है। सच्चे प्रेमी को परमात्मा का कृपा-प्रसाद मिलता ही है।

सच्ची भक्ति के कारण रविदास जी को भी प्रभुकृपा से राम-नाम का, भगवन्नाम का सहारा मिल गया था। गुरु से राम-नाम की दीक्षा मिल गई थी और उनकी साधना तीव्र-से-तीव्र, गहरी-से-गहरी होती जा रही थी, जिससे उन्हें कुछ आशा की किरण दिखाई देने लगी थी।

वे अब अपने मन को सांत्वना देते कि 'रे मन, तू तो बहक रहा है। तू अब आशा रख, क्योंकि राम-नाम स्मरण से कुछ लोग नीच कर्म करते हुए भी ऊँचे पद को, परमपद को प्राप्त कर गए और अजामिल, गज, गणिका आदि सभी का उद्धार हो गया तो तेरा उद्धार क्यों न होगा। तू आशा रख, तेरा उद्धार भी अवश्य ही होगा। बस, तू परमात्मा में लगा रह। एक-न-एक दिन भाव-भक्ति से वैतरणी पार करके भगवत् शरण मिलेगी ही।'

भावविभोर हो वे आगे कहते कि—"संसार में और कोई सगा-संबंधी नहीं है, केवल भगवन्नाम ही एक सहारा है। इसलिए रे मन, तू गुरुवचन याद कर नाम भज; क्योंकि राम-नाम, भगवन्नाम पारसमणि है, जिसके छूने से ही लोहा कंचन बन जाता है।"

इस प्रकार नित्य भगवद्स्मरण करते हुए रविदास जी का मन रागमय होता जा रहा था। उनकी आस्था दृढ़ होती जा रही थी। उन्हें यह विश्वास हो गया था कि उन्होंने गुरु का दिया हुआ राम-नाम, भगवन्नाम का मंत्र अपने हृदय की पाटी पर लिख लिया है, जो अब मिटाए नहीं मिट सकता है, बल्कि उसी के प्रभाव से अब जीवन से अविद्या, माया आदि का मिटना अवश्यंभावी है, सुनिश्चित है।

इस प्रकार संत रविदास जी नित्य भगवन्नाम स्मरण करते रहे और फलस्वरूप परमात्मा का साक्षात्कार, परमात्मा का परमप्रेम, परमात्मा का दर्शन प्राप्त कर धन्य हो गए। उनकी साधना, उनकी भक्ति सफल हुई, पूर्ण हुई। वे आजीवन श्रम करते हुए ईमानदारी, सच्चाईपूर्वक जीवन जीते रहे और अपने सत्संग से भगवन्नाम, भगवद्भक्ति का प्रचार करते रहे। ❑

गांधी जी युवा थे तो कुसंगत में पड़ गए। बुरी आदतों को पूरा करने के लिए उन्हें कर्ज लेना पड़ा। जब कर्जदार कर्ज चुकाने के लिए परेशान करने लगा तो उन्होंने घर से सोना चुराकर कर्ज अदा कर दिया। कर्ज तो चुक गया, परंतु चोरी करने के कारण उनके मन में गहरा अपराध-बोध रहने लगा।

पिताजी से सीधे कहने की हिम्मत नहीं पड़ी तो उन्होंने पिताजी के नाम एक पत्र लिखा और उसमें अपना सारा दोष बता दिया। पिताजी ने उन्हें क्षमा कर दिया। गांधी जी ने उसी दिन संकल्प लिया कि वे भविष्य में ऐसी गलती कभी नहीं करेंगे, हमेशा सत्य के साथ रहेंगे।

भगवान के सम्मुख सच्चे हृदय से अपने दोष स्वीकार कर लेने से अंतर्मन निर्मल हो जाता है।

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा–12

घर में सिमटा स्वर्ग

दुराव और संकोच का नाम नहीं। आयु और योग्यता के अंतर की बात भूलकर हम लोग जब साथ-साथ हँसते, बातें करते, खेलते और खाते तो लगता कि स्वर्ग सिमटकर हम लोगों की इस कुटिया में एकत्रित हो गया। परस्पर स्नेह और विश्वास की इतनी सघनता कि एकदूसरे को देखकर जिए। वातावरण में इतनी पवित्रता कि दुर्भाव एवं अचिंत्य चिंतन के लिए कोई गुंजायश ही न रहे।

परस्पर सहानुभूति और सहिष्णुता की इतनी सघनता कि एक के कष्ट को दूसरा अपने कष्ट से बढ़कर समझे। किसी-से-किसी के प्रति जाने-अनजाने में अनुचित बन पड़े तो तब तक चैन से न बैठे, जब तक कि दु:ख पहुँचाने वाले के मन से पूरी तरह वह बात निकल न जाए और क्षमा के स्पष्ट लक्षण न दीखने लगें।

ऐसे प्रसंग कभी-कभी ही आते थे, पर जब आते तो कष्ट उठाने वाले से उसे अधिक दु:खी होना पड़ता जिसने कुछ अनुचित करके कष्ट पहुँचाया। पैसे की चोरी, बाजार से चटोरपन अथवा फैशन की चीजें खरीदने का तो कभी किसी का मन चला ही नहीं।

सादगी और सात्त्विकता में जब गर्व-गौरव अनुभव किया जाने लगा तो फिर बाजारू आकर्षणों से लुभाकर छिछोरेपन का परिचय कौन दे? गुरुदेव की निष्ठापूर्ण उपासनापद्धति का गहरा आस्तिकतावादी प्रभाव हम सब पर पड़ा। सामूहिक प्रार्थना, दैनिक जप-साधना तो घर के सब लोग करते ही थे।

संस्कारगत छाप यह पड़ी कि ईश्वर को प्रसन्न करने वाले कार्यों में रुचि और प्रभु की अप्रसन्नता वाले कदमों से बचाव का ध्यान निरंतर बना रहा। प्रलोभन या भय का अवसर आने पर भी कोई कुमार्गगामी न बने यह ध्यान रखा गया। शिक्षा, वाणी से नहीं, चरित्र के माध्यम से दी गई और वह उतनी प्रभावशाली थी कि घर के हर सदस्य के व्यक्तित्व का अविछिन्न अंग ही बन गई। सोचती हूँ यदि हर व्यक्ति अपना चरित्र ऊँचा उठाकर अपने घर-परिवार को सँभालने, सुधारने में समर्थ हो जाए तो भी कितना बड़ा कार्य विश्व-निर्माण की दिशा में हो सकता है। सब अपना-अपना घर, परिवार सँभाल लें तो दुनिया को सँभलते, सुधरते क्यों देर लगे?

यों कहने को हम छह प्राणी उस घर में रहते थे, पर किसी ने कभी यह नहीं समझा कि यहाँ की वस्तुएँ हम लोगों के अधिकार स्वामित्व की हैं। गुरुदेव का परिवार अति विशाल है। लाखों नर-नारी उन्हें अपना पिता, स्वजन और आत्मीय मानते हैं। किसी प्रयोजन से मथुरा आने वाले के लिए इस घर का द्वार सदा ही खुला रहा। भोजन के समय जो आया, प्रस्तुत सामग्री में सम्मिलित होता चला गया। चीजें कम थीं तो मिल-बाँटकर खा लीं, अक्सर हम लोगों के साथ अतिथियों का आधा-चौथाई भोजन जो बाँट में आता खाकर काम चलाना पड़ता।

नया बनाने में बहुत देर लगती, उतनी प्रतीक्षा कौन करे? मिल-बाँटकर खाने में किसी को कम

मिला तो भी किसी ने कुछ बुरा न माना, वरन इस कमी को आत्मीयता की गहनता के रूप में ही देखा। रात में कभी कुछ लोग आए और भूखे दीखे तो बात-की-बात में खिचड़ी पकी और किसी प्रकार पेट भर लिया गया।

कपड़े कम थे तो इकट्ठे सो गए। आगंतुकों ने कभी यह नहीं पाया कि जाति-बिरादरी, गरीब-अमीर, अपने-पराए या उपयोगी-अनुपयोगी के कारण किसी से कुछ भेदभाव बरता जाता है। गायत्री तपोभूमि तो अभी थोड़े दिन पहले ही बनी है। वहाँ ठहरने भर का प्रबंध हो सका है।

भोजन करने तो अतिथि अभी भी घीयामंडी ही आते थे। पहले ठहरते भी इसी में थे। स्थान कम था, साधन कम थे तो भी उतने में ही मिल-जुलकर दर्जनों आगंतुक इसी में खप जाते थे। इस आत्मीयता में दिखावट या किसी स्वार्थपरता की गंध भी न थी, विशुद्ध ममत्व, सरल और निश्छल व्यवहार।

खुली वास्तविकता का संपर्क में आने वालों पर इतना प्रभाव पड़ा कि वे इस सरलता और महानता के अद्‌भुत समन्वय को देखकर दंग रह गए। जो एक बार संपर्क में आया सदा के लिए अपना होकर रहा, गुरुदेव की वाणी, विद्या, तपस्या का जो भी प्रभाव रहा हो, उसका मतलब लगाना दूसरों का काम है, पर मैं अपने अनुभव से कह सकती हूँ कि खुली पुस्तक जैसे हम लोगों के सरल और स्नेहसिक्त जीवनक्रम की जो छाप संपर्क में आने वालों पर पड़ी है, उसकी पकड़ ने इस विशाल परिवार को स्नेहसूत्र में बाँधने और इतना बड़ा संगठन खड़ा कर देने में कम योगदान नहीं दिया है।

आदमी प्रतिभा से ही प्रभावित नहीं होता, सज्जनता और सच्चाई अपने आप में इतनी प्रभावशाली है कि पराये को अपना बनाने में उसे आसानी आ सके। ❑

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से एक बार उनके शिष्यों ने अपनी जिज्ञासा व्यक्त की—"जब कभी भी अवतारी सत्ताएँ आती हैं तो उनके शिष्यों में आध्यात्मिक विकास संबंधी एकरूपता क्यों नहीं होती। किसी का आध्यात्मिक विकास ज्यादा होता है, किसी का कम—यदि अवतार चाहें तो क्या सबकी समान आत्मिक प्रगति नहीं करा सकते?"

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने उत्तर दिया—"संसार में कर्मफल विधान का नियम है। हर व्यक्ति अपने द्वारा किए कर्मों के अनुसार प्रगति करता है, माध्यम चाहे कोई भी बने और अवतारों का कार्य बीज डाल जाना है, फिर वह चाहे जब भी फलित हो। छत पर बीज डला रह जाए तो घर ढह जाने पर भी उस बीज से पेड़ पैदा हो जाता है। कौन-से बीज का पेड़ बनेगा, यह उस बीज की संकल्पशक्ति पर निर्भर है। ठीक वैसे ही अवतार सब पर अनुग्रह करते हैं, पर उसका फल वही पाते हैं, जो उस हेतु स्वयं भी संघर्ष करते हैं।"

एकांत का आनंद

एकांत में बैठने, वक्त गुजारने, उसे महसूस करने का अपना ही आनंद है। एकांत व उससे उपजी शांति शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक स्वास्थ्य के लिए मरहम का काम करती है; जबकि बहुत ज्यादा शोरगुल खून में कोलेस्ट्राल के स्तर को बढ़ा देता है। इसकी वजह से हाई ब्लडप्रेशर की समस्या हो सकती है और व्यक्ति हृदय रोग का भी शिकार हो सकता है।

यदि हम एकांत का लाभ उठाने की सही तकनीक जान लें तो शोर के कारण होने वाले नुकसानों को कम किया जा सकता है। अक्सर एकांत से लोग डरने की शिकायत करते हैं। वे एकांत होने पर सन्नाटे की स्थिति में आने के कारण घबरा जाते हैं। इसलिए सन्नाटे से बाहर आकर एकांत में समाने की कोशिश करनी चाहिए। उससे डरना या घबराना नहीं चाहिए, बल्कि हर क्षण में एकांत तलाशने की काबिलियत खुद में पैदा करनी चाहिए।

एकदम संभव है कि हम शोरगुल के बीच एकांत को महसूस कर सकते हैं। एकांत की सबसे ज्यादा जरूरत सुबह-सुबह होती है; क्योंकि उसके बाद कोलेस्ट्राल की मात्रा बढ़ने लगती है। टीवी देखने या अखबार पढ़ने के बजाय कुछ देर चुपचाप बैठना चाहिए। सुबह के आधा घंटे का एकांत खुद को देना चाहिए। प्रकृति का संगीत एकांत है, जिसका पूरा आनंद लेना चाहिए, महसूस करना चाहिए। अपने बगीचे की देख-भाल करनी चाहिए। उसका माली खुद बनना चाहिए, इतनी मानसिक शांति महसूस होगी कि उच्च रक्तचाप हो या कोलेस्ट्राल का बढ़ा स्तर, सब शांत हो जाएगा।

बागवानी के भी फायदे हैं, एक तो यह कि बागवानी हमको प्रकृति के निकट रखती है और जब हम प्रकृति के निकट होते हैं तो वह क्षण एकांत में बिताने का समय होता है। इससे तनाव व मानसिक दबाव का स्तर कम होता है। इसलिए आँखें मूँदकर जो अच्छा लगे, उस बारे में मन-ही-मन सोचना चाहिए, दिन भर के कामों पर मनन करना चाहिए इससे थकान दूर होगी और मन को चैन मिलेगा।

मोबाइल फोन, इंटरनेट की घंटियों से सारा माहौल गुंजायमान रहता है। इस तरह की आवाजें शोर का रूप धारण कर लेती हैं। इसलिए कोशिश करनी चाहिए कि कभी-कभार जब सोने जा रहे हों या शांति से बैठे हों, तो ऐसे समय में कुछ देर के लिए ऐसे उपकरणों को बंद करके कुछ घंटे एकदम शांतिपूर्वक अलग अंदाज में बिताना चाहिए।

जिंदगी आजकल इतनी तनावपूर्ण और व्यस्त हो गई है कि लोगों के सोने-जागने का वक्त ही बदल गया है। परिणामस्वरूप अनिद्रा, अवसाद और तनाव की स्थिति बनती जा रही है। देर रात तक जागना और सुबह देर से जागना, इससे जीवन और स्वास्थ्य दोनों का संतुलन बिगड़ता है।

जरूरी है कि दस या साढ़े दस बजे रात्रि तक सो जाएँ और सुबह छह बजे तक उठें। यह समय

हमारी सैर का भी हो सकता है और एकांत का भी। जरूरी है कि ऐसे समय काम का, दफ्तर का अथवा घर की किसी भी मुसीबत का विचार, मस्तिष्क में नहीं होना चाहिए। अगर सैर पर नहीं जाना चाहते हैं तो अपने बगीचे की देख-भाल करते हुए भी हम एकांत का लाभ उठा सकते हैं।

इतना-सा प्रयास हमारा मन-मस्तिष्क और स्वास्थ्य सुरक्षित रखेगा। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए भोजन की सात्त्विकता पर ध्यान देना चाहिए। ठीक इसी तरह भारतीय स्वास्थ्य के लिए स्वाध्याय एवं मानसिक संगीत की जरूरत है। इससे एकांत का आनंद और बढ़ जाता है। ❑

एक राज्य में एक राजा अपनी न्यायप्रियता के लिए विख्यात था। एक बार उसके पास एक जटिल मामला न्याय हेतु आया। मामला एक भिखारी का था। घटना कुछ इस प्रकार की थी कि भिखारी को मार्ग में एक बटुआ पड़ा मिला, जिसमें सौ मुहरें थीं। वह उन्हें सरकारी विभाग में जमा कराने चल दिया, परंतु उसे रास्ते में एक सौदागर मिला, जो उससे बोला—"बटुआ उसका है और वह उसकी ईमानदारी के लिए उसे आधी मुहरें देगा।" भिखारी ने बटुआ उस सौदागर को सौंप दिया, पर पैसे मिलते ही सौदागर के मन में बदनीयती आ गई। उसी भाव से वह भिखारी से बोला—"अरे इसमें तो दो सौ मुहरें थीं, तुमने आधी रख ली हैं।" भिखारी ईमानदार था, वह झूठा इल्जाम स्वीकार न कर सका। इसलिए वह न्याय माँगने राजदरबार पहुँचा।

राजा बात सुनते ही समझ गया कि सौदागर बेईमान है और वह बोला—"सौदागर! भिखारी यह बटुआ सरकारी कोष में जमा कर रहा था, इससे यह तय है कि वह पैसे नहीं रखना चाहता था। तुम कहते हो कि तुम्हारे बटुए में दो सौ मुहरें थीं और इसमें से सौ निकलीं तो इसका मतलब यह बटुआ तुम्हारा नहीं है और भिखारी को किसी और का बटुआ मिला है। भिखारी को मिले बटुए का आधा हिस्सा राजकोष में रख लिया जाए और आधा उसे पुरस्कारस्वरूप दे दिया जाए। जहाँ तक तुम्हारे बटुए का प्रश्न है तो वह जब मिलेगा, तुम्हें वापस कर दिया जाएगा।" लालची सौदागर हाथ मलता रह गया; क्योंकि बटुआ उसी का था, पर ज्यादा पाने के लालच में वह अपनी ही दौलत गँवा बैठा था।

ऐसे बनें भगवत्कृपा के अधिकारी

यह निर्विवाद सत्य है कि जिसका जन्म हुआ है, उसकी मृत्यु भी सुनिश्चित है, पर सत्य यह भी है कि मृत्यु जीवन का अंत नहीं, बल्कि एक पड़ाव मात्र है, एक ठहराव मात्र है। क्यों? क्योंकि जीवन में किए गए कर्मों के अनुसार जीवात्मा मृत्यु के पश्चात पुनः अपने कर्मों का फल भोगने को, नूतन शरीर, नूतन जीवन प्राप्त करती है और जन्म एवं मरण का, जीवन और मृत्यु का यह क्रम चलता ही रहता है।

यह क्रम तब तक चलता है, जब तक कि जीवात्मा कर्मसंस्कारों से, कर्मबंधनों से पूरी तरह मुक्त होकर अपने वास्तविक सत्-चित्-आनंद स्वरूप को न पा ले। अपनी 'सोऽहम्' 'शिवोऽहम्' और 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि अवस्थाओं की अनुभूति न कर ले, अनुभूति न पा ले।

अस्तु हम यह समझ लें कि इस बार इस दुनिया में हमारा आगमन प्रजनन, परिवार और हमारी उदरपूर्ति के लिए नहीं हुआ है। उन्हीं सामान्य क्रियाओं को दोहराने मात्र के लिए नहीं हुआ है, जिन्हें हम अगणित जन्मों से दोहराते रहे हैं और फलस्वरूप दुःख, शोक और बंधन में पड़े रहकर जीवन के परमलक्ष्य और परमानंद से विमुख रहे हैं।

इसलिए इस बार हमें इस जीवन को व्यर्थ गँवा देने से बचना है और इस बार हमें हर पल, सचेत रहना है, सावधान रहना है। हमारा हरेक कर्म हमें उसी ओर ले जाने वाला ही होना चाहिए, जिधर परमानंद, ब्रह्मानंद को पाकर सदैव के लिए आनंदित और जीवन-मरण के बंधन से मुक्त हो जाने की परम संभावना विद्यमान है।

वह मार्ग ही ईश्वर का मार्ग है, परमेश्वर का मार्ग है, परमात्मा का मार्ग है, ब्रह्म का मार्ग है। उस मार्ग पर ही हमें इस जीवन में अविचलित, अविराम चलते रहना है, बढ़ते जाना है, तभी हमें आत्मज्ञान की, ब्रह्मज्ञान की, ब्रह्मानंद की, परमानंद की उपलब्धि हो सकेगी और हमें सभी प्रकार के दुःखों से मुक्ति मिल सकेगी। साथ ही हमें जीवन-मरण के बंधन से भी मुक्ति मिल सकेगी। इस हेतु हमें जीवन के हर कदम पर सचेत रहना होगा, सावधान रहना होगा।

हमें ध्यान रखना होगा कि हमारा मन कहीं संसार में आसक्त तो नहीं हो रहा है। कहीं हमारा मन संसार में डूब तो नहीं रहा है। इसको लेकर हमेशा अपने मन पर हमें पैनी नजर रखनी होगी। हमें इस संसार में रहना है, पर संसार मेरे मन में न रह सके, न टिक सके, हमें हमेशा इस बात का ख्याल रखना है और सावधान रहना है; क्योंकि सावधानी हटी तो दुर्घटना घटी। हमें संसार में रहकर अपने पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय व मानवीय कर्त्तव्यों का पालन उच्चतम नैतिक मूल्यों, मानवीय मूल्यों व आदर्शों के साथ करना है।

इसमें कोई संदेह नहीं, पर हमारे मन-मंदिर में संसार पलभर के लिए भी न हो। हमारे मन-मंदिर, हृदय-मंदिर में हमेशा भगवान का वास हो। मन-मंदिर में, हृदय-मंदिर में भगवान का वास जितना प्रगाढ़ होगा, हमारा मन संसार से उतना ही विरक्त होगा और भगवान में उतना ही आसक्त होगा। हमारे मन में भगवान का सदैव के लिए वास हो, इस हेतु हमें नियमित रूप से भगवद्ध्यान,

शास्त्रों व सत्साहित्य का स्वाध्याय, सात्त्विक आहार-विहार, जीवन में शुचिता-पवित्रता आदि का अभ्यास करते रहना होगा।

जैसे रंगमंच पर किसी नाटक में किसी पात्र की, चरित्र की भूमिका निभा रहा व्यक्ति यह भली भाँति जानता है कि वह जो कुछ भी कर रहा है, वह नाटक का हिस्सा है। इसलिए वह उस नाटक में स्वयं के द्वारा खेली जा रही भूमिका के प्रति आसक्त नहीं होता। वह तो नाटककार के कहे अनुसार अपनी भूमिका निभाता जाता है। नाटककार के कहे अनुसार, लिखे अनुसार वह अपनी भूमिका का निर्वाह भर करता है।

उसी प्रकार हमें जीवन में पारिवारिक, सामाजिक व्यवहार करते हुए यह भली भाँति स्मरण रखना है कि यह संसार एक रंगमंच है और प्रभु ही इस संसाररूपी रंगमंच के रचनाकार, सूत्रधार हैं। हमें तो बस, इस संसार में रहते हुए अपने कर्त्तव्यों का पालन भर करना है, पर हमारा असली लक्ष्य, वास्तविक लक्ष्य प्रभु को पाना है, प्रभु का कृपापात्र बनना है। इसलिए हमारा पूरा जोर, अपने वास्तविक लक्ष्य की पूर्ति पर ही होना चाहिए।

एक संत ने कहा है कि 'यदि तुम्हें परमानंद को पाना है तो स्वयं को परमानंद के स्रोत परमात्मा का यंत्र बना लो, उपकरण बना लो। अपने आप को परिष्कृत और प्रशिक्षित कर लो। अपने आप को बंजर जमीन या अनगढ़ पत्थर के टुकड़े की तरह मत छोड़ दो; क्योंकि हीरा अपना पूरा सौंदर्य तभी दिखाता है, जब उसे कलात्मक रूप से तराशा जाए।

उन्होंने आगे लिखा है कि 'जब तुम यह चाहते हो कि तुम्हारी भौतिक सत्ता ईश्वरीय चेतना को अभिव्यक्त करने के लिए एक पूर्ण यंत्र बन सके तो तुम्हें स्वयं का तदनुरूप पोषण करना होगा। तुम्हें स्वयं को वैसा ही आकार देना होगा। तुम्हें स्वयं को सुसंस्कृत बनाना होगा। तुम्हें वह सब कुछ करना होगा, जो तुम्हें भगवान का यंत्र बनने और बनाने के लिए आवश्यक है।'

यह सत्य है कि जब हम संपूर्ण समर्पण के साथ ईश्वर के मार्ग पर चल पड़ते हैं, तब हमें दृश्य अथवा अदृश्य रूप में भगवत्कृपा की अनुभूति भी होने लगती है। हमारी चित्तशुद्धि होती जाती है, मन निर्मल होता जाता है और जब मन पूर्णत: निर्मल हो जाता है, तब हमें अपने हृदय-गुफा में स्थित आत्मा में ईश्वरीय आनंद की अनुभूति होने लगती है। पर हाँ! भगवत्कृपा को ग्रहण करने के लिए यह आवश्यक है कि हम स्वयं को पूर्णत: परमात्मा को सौंप दें।

हम अपने आप को पूर्णत: परमात्मा को सौंपकर निश्चित हो जाएँ। हम अपनी निजी कामनाओं, वासनाओं, इच्छाओं को तिलांजलि दे दें, जिससे कि हमारे भीतर परमात्मा की इच्छा अभिव्यक्त होने लगे। हमारे भीतर परमात्मा की इच्छा प्रकट होने लगे और हम परमात्मा का एक पूर्ण यंत्र बनकर मात्र रह सकें।

जब हमने स्वयं को पूर्णत: परमात्मा को सौंप ही दिया तो फिर हमारी कोई निज इच्छा रही ही कहाँ? हमारा तब कोई निज मान, सम्मान, अपमान, हर्ष-विषाद, जय-पराजय, सफलता-असफलता, सुख-दु:ख, हानि-लाभ आदि कहाँ रहा, पर इसे हम तभी समझ पाते हैं, जब हम सच्चे मन से स्वयं को प्रभु के चरणों में पूर्णत: अर्पित कर देते हैं और जब हम स्वयं को पूर्णत: अर्पित कर देते हैं, सौंप देते हैं, तभी हम भगवत्कृपा ग्रहण कर पाते हैं।

एक संत ने लिखा है कि 'भगवत्कृपा एक ऐसी चेतना है, जो तुम्हें परम लक्ष्य की ओर धकेल देती है। उस कृपा को तुम मन के द्वारा समझने की कोशिश मत करो; क्योंकि उससे तुम किसी निर्णय पर नहीं पहुँचोगे; क्योंकि भगवत्कृपा एक ऐसी चेतना है, जिसकी व्याख्या मानवीय शब्दों या भावों के द्वारा नहीं की जा सकती। जब कृपाशक्ति कार्य

करती है तब उसका परिणाम या तो प्रिय हो सकता है या अप्रिय। पर वह प्रिय हो या अप्रिय, वह हमारे लिए हितकर ही है।

वे आगे कहते हैं कि 'भगवत्कृपा किसी मानुषी या मानवीय मूल्य-महत्त्व का कोई विचार नहीं करती। ऐसा भी हो सकता है कि मनुष्य की सामान्य और ऊपरी दृष्टि से उसका परिणाम संहारकारी हो, परंतु वह व्यक्ति के लिए सर्वदा ही सर्वोत्तम होता है। वह भगवान की ओर से आती है जिससे कि मनुष्य छलाँग भरते हुए प्रगति-पथ पर, आनंद-पथ पर, भागवत-पथ पर अग्रसर हो सके। कृपा वह भावना है, जो तुम्हें तीव्र गति से सिद्धि की ओर, परमानंद की ओर ले जाती है।'

इस संबंध में श्रीअरविंद ने भी बहुत सुंदर कहा है कि 'यदि सचमुच भागवतमार्ग पर चलकर भगवत्कृपा पाना चाहते हो तो स्वयं को भगवान के प्रति पूर्णत: निछावर कर दो, अर्पण कर दो। इस संसार को भगवान की नाट्यशाला (रंगमंच) मानो। तुम अभिनेता का मुखौटा बनो और फिर उन्हें ही, भगवान को ही अपने द्वारा अभिनय करने दो।'

वे आगे कहते हैं कि 'यदि लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं या आलोचना तो यह जान लो कि वे भी मुखौटे ही हैं। केवल अंत:स्थित भगवान को ही अपना एकमात्र आलोचक और दर्शक मानो। परमप्रभु का सर्वांगपूर्ण यंत्र होने से बढ़कर कोई गौरव नहीं।'

वहीं स्वामी विवेकानंद का यह स्पष्ट मत है कि 'ईश्वरीय कृपा का पात्र होना या ईश्वर को पाना, यह एक ही बात है। महत्त्वपूर्ण यह है कि ईश्वर के प्रति प्रेम निष्कपट होना चाहिए; क्योंकि ईश्वर की खोज का आरंभ, मध्य और अंत प्रेम में होता है। ईश्वर के प्रति प्रेमोन्मत्तता का एक क्षण भी हमारे लिए शाश्वत मुक्ति देने वाला होता है। सच्चा ईश्वरप्रेमी ही ईश्वर की कृपा का पात्र बनने योग्य होता है।'

स्वामी जी आगे कहते हैं कि 'जो ईश्वर के प्रति प्रेमोन्मत्तता को पा लेता है, वह निस्संदेह ईश्वरीय कृपा का पात्र बन जाता है, पर हाँ! इस प्रेम से किसी काम्य वस्तु की प्राप्ति नहीं हो सकती; क्योंकि जब तक सांसारिक वासनाएँ घर किए रहती हैं, तब तक इस प्रेम का उदय नहीं होता।'

इस संबंध में परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि श्रीराम शर्मा आचार्य जी कहते हैं कि 'जब भगवान के मार्ग पर चल पड़े हो तो फिर संसार की परवाह मत करो। लोग क्या कहते हैं या लोग क्या कहेंगे, इसकी परवाह बिलकुल भी मत करो। सिर्फ और सिर्फ भगवान की ही परवाह करो; क्योंकि तुम्हें परमानंद, ब्रह्मानंद को पाने के लिए संसार की नहीं, वरन भगवत्कृपा ग्रहण करने की आवश्यकता है।'

पूज्यवर आगे कहते हैं कि 'इसलिए सच्ची भगवद्भक्ति और भगवद्ध्यान के निरंतर अभ्यास से मन को सभी प्रकार के विचारों से मुक्त कर लो और स्वयं को पूर्णत: परमात्मा को सौंप दो। परमात्मा सर्वव्यापी, सर्वशक्तिशाली और शरणागतवत्सल हैं। जो भी सच्चे मन से परमात्मा का पल्लू पकड़ लेता है—वह परमात्मा का कृपापात्र अवश्य बनता है।'

अस्तु यह स्पष्ट है कि यदि हमें जीवन-मरण के बंधन से मुक्त होकर सभी प्रकार के दु:खों से मुक्त होना है और परमात्मा के रूप में परमानंद को पाना है तो जरूरी है कि हम भी सच्चे मन से परमात्मा के मार्ग पर चल पड़ें; क्योंकि परमात्मा के मार्ग पर चलने से ही हमें परमात्मा की कृपा प्राप्त हो सकेगी और परमात्मा की कृपा से हमें वह सब कुछ प्राप्त हो सकेगा, जिसके लिए हमारी आत्मा जन्म-जन्मांतरों से प्यासी है।

हमारे अंदर भगवान को पाने की तीव्र अभीप्सा के साथ-साथ उनके प्रति पूर्ण समर्पण, विश्वास और निश्छल प्रेम होना चाहिए, तभी हम अपने अभीष्ट को प्राप्त कर सकेंगे। ❑

युवाओं को दिशा दें

आँखों में उम्मीद के सपने, नई उड़ान भरता हुआ मन, कुछ कर दिखाने का दमखम और दुनिया को अपनी मुट्ठी में करने का साहस रखने वाला युवा कहा जाता है। युवा शब्द ही मन में उड़ान और उमंग पैदा करता है। उम्र का यही वह दौर है, जब न केवल उस युवा का बल्कि उसके राष्ट्र का भविष्य तय किया जा सकता है। आज के भारत को युवा भारत कहा जाता है; क्योंकि हमारे देश में असंभव को संभव में बदलने वाले युवाओं की संख्या सर्वाधिक है।

आँकड़ों के अनुसार भारत की 65 प्रतिशत जनसंख्या 35 वर्ष आयु तक के युवकों की और 25 साल तक की उम्र के नौजवानों की संख्या 50 प्रतिशत से भी अधिक है। ऐसे में यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है कि युवाशक्ति वरदान है या चुनौती ? महत्त्वपूर्ण इसलिए भी कि यदि युवाशक्ति का सही दिशा में उपयोग न किया जाए तो इनका जरा-सा भी भटकाव राष्ट्र के भविष्य को अनिश्चित कर सकता है।

आज का एक सत्य यह भी है कि युवा बहुत मनमानी करते हैं और किसी की सुनते नहीं। दिशाहीनता की इस स्थिति में युवाओं की ऊर्जा का नकारात्मक दिशा में भटकाव होता जा रहा है। लक्ष्यहीनता के माहौल ने युवाओं को इतना दिग्भ्रमित करके रख दिया है कि उन्हें सूझ ही नहीं पड़ रहा कि करना क्या है, हो क्या रहा है और आखिर उनका होगा क्या ?

आज से दो-तीन दशक पूर्व तक साधन-सुविधाओं से दूर रहकर पढ़ाई करने वाले बच्चों में **'सुखार्थिनः कुतो विद्या, विद्यार्थिनः कुतो सुखम्'** के भावों के साथ जीवन-निर्माण की परंपरा बनी हुई थी और ऐसे में जो पीढ़ियाँ हाल के वर्षों में नाम कमा पाई हैं, अब ऐसा संभव नहीं।

धैर्य की कमी, आत्मकेंद्रिता, नशा, लालच, हिंसा आदि बातें जैसे उनके स्वभाव का अंग बनती जा रही हैं। नशे से युवाओं की असमय मृत्यु चिंताजनक बात हो गई है। जानकारी के अनुसार आजकल के बालकों की मित्र मंडली उन तमाम व्यसनों से घिरी थी, जिसे अब बुरा नहीं, आधुनिकता का पर्याय माना जाता है।

आजकल के किशोर स्कूली छात्र की उम्र में नशे के आदी हो जाते हैं। पिता अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं, इसलिए पुत्र को पर्याप्त समय नहीं दे पाते। परिणाम ऐसा भयंकर आता है कि वे अपने पुत्रों से वंचित हो जाते हैं। केवल एक बालक की बात नहीं, एक ताजा शोध के अनुसार अब युवा अधिक रूखे स्वभाव के भी हो गए हैं। वे किसी से घुलते-मिलते नहीं।

इंटरनेट के बढ़ते प्रयोग के इस युग में रोजमर्रा की जिंदगी में आमने-सामने के लोगों से रिश्ते जोड़ने की अहमियत कम हो गई है। क्या यह सत्य नहीं कि आज की पीढ़ी जो कुछ सीख पाई है, उसमें हमारा दोष सर्वाधिक है। इन परिवेशीय हालातों में अंकुरित और पल्लवित नई पीढ़ी को न संस्कारों की खाद मिल पाई, न स्वस्थ विकास के लिए जरूरी वातावरण। मिला सिर्फ प्रदूषित माहौल और नकारात्मक भावभूमि। आज का युवा अधिकतर मामलों में नकारात्मक मानसिकता के साथ जीने लगा है।

उसे दूर-दूर तक कहीं कोई रोशनी की किरण नजर नहीं आ रही। वर्तमान स्थिति के लिए हमारे स्वार्थ और समझौते जिम्मेदार हैं, जिनकी वजह से हमने सिद्धांतों को छोड़, आदर्शों से किनारा कर लिया और नैतिक मूल्य तक दाँव पर लगा दिए। वह भी किसलिए? सिर्फ और सिर्फ अपनी वाहवाही कराने या अपने नाम से माल बनाने। हालात भयावह होते जा रहे हैं, हमें इसका अंदाजा नहीं लग पा रहा है, क्योंकि हमारी बुद्धि कुंद हो गई है।

आज की शिक्षा ने नई पीढ़ी को संस्कार और किसी की समझ नहीं दी है। यह शिक्षा मूल्यहीनता को बढ़ाने वाली साबित हुई है। अपनी चीजों को कमतर करके देखना और बाहरी सुखों की तलाश करना इस जमाने को और विकृत कर रहा है।

परिवार और उसके दायित्व से टूटता सरोकार ही आज के जमाने के सत्य हैं। अविभक्त परिवारों की ध्वस्त होती अवधारणा, अनाथ माता-पिता, फ्लैट्स में सिकुड़ते परिवार, प्यार को तरसते बच्चे, नौकरों, दाइयों एवं ड्राइवरों के सहारे जवान होती नई पीढ़ी हमें क्या संदेश दे रही है?

यह बिखरते परिवारों का भी जमाना है। इस जमाने ने अपनी नई पीढ़ी को अकेला होते और बुजुर्गों को अकेला करते भी देखा है। बदलते समय ने लोगों को ऐसी खोखली प्रतिष्ठा में डुबो दिया है, जहाँ अपनी मातृभाषा में बोलने पर मूर्ख और अँगरेजी में बोलने पर समझदार समझा जाता है।

संचार क्रांति का दुरुपयोग चरम पर है। मोबाइल हर युवा के हाथ में ही नहीं, बल्कि प्राइमरी स्कूल से ही बस्ते में पहुँच अबोध बच्चों की जिंदगी का अहम हिस्सा बन रहा है। एसएमएस और वीडियो का शौक इतना बढ़ चुका है कि वे उसी में मस्त हैं और अपने भविष्य को लेकर बेखबर। ऐसे में पढ़ाई का क्या अर्थ रह जाता है?

हमारे मन-मस्तिष्क पर इंटरनेट के प्रभावों पर निकोलस कार की चर्चित पुस्तक है 'दि शैलोज'। इसे पुलित्जर पुरस्कार के लिए नामित भी किया गया था। लेखक का मत है कि इंटरनेट हमें सनकी बनाता है, हमें तनावग्रस्त करता है, हमें इस ओर ले जाता है कि हम इस पर ही निर्भर हो जाएँ। चीन, ताइवान और कोरिया में इंटरनेट व्यसन को राष्ट्रीय स्वास्थ्य संकट के रूप में लिया है और इससे निबटने की तैयारी भी शुरू कर दी है।

भौतिकवाद की अंधी दौड़ में कहीं-न-कहीं युवा भी उलझता एवं फँसता चला जा रहा है। पश्चिमीकरण के पहनावे और संस्कृति को अपनाने में उसे कोई हिचक नहीं होती है।

आज किशोर भी 14-15 वर्ष की आयु में ही ड्रग्स और डिस्को का आदी हो रहा है। नशे की बढ़ती प्रवृत्ति ने हत्या और बलात्कार जैसे गंभीर अपराधों को जन्म दिया है। जिससे इस युवा शक्ति का कदम अंधकार की तरफ बढ़ता हुआ दिख रहा है।

गायत्री-साधना कभी भी निष्फल नहीं जाती। —*परमपूज्य गुरुदेव*

युग तेजी से बदल रहा है, परंपराएँ बदल रही हैं। मूल्यों के प्रति आस्था विघटित हो रही है। तब ऐसा लगता है कि सब कुछ बदल रहा है। इस बदलावपूर्ण स्थिति में बदलाहट-टकराहट टूटने से पूरी युवा पीढ़ी प्रभावित हो रही है। युवा पीढ़ी में आज धार्मिक क्रियाकलापों और सामाजिक कार्यों के प्रति उदासीनता दिखती है। ऐसे समय में युवाओं को चेतने की जरूरत है।

यदि आज वे नहीं चेत पाते तो कल अवश्य ही बहुत देर हो जाएगी। युवाओं को अपनी संस्कृति एवं मूल्यों के साथ जोड़ने की आवश्यकता है, ताकि वे स्वयं के प्रति सचेष्ट एवं जागरूक हो सकें। अपनी सामर्थ्य की पहचान कर सकें एवं विकासोन्मुखी हो सकें। ❑

सजल श्रद्धा-प्रखर प्रज्ञा

विगत अंक में आपने पढ़ा कि सन् 1981 के उत्तरार्द्ध में पूज्य गुरुदेव ने कुछ विशिष्ट कार्यों के आरंभ को अंजाम दिया। देवोत्थान एकादशी के शुभमुहूर्त के साथ ही सजल श्रद्धा-प्रखर प्रज्ञारूपी दिव्य स्मारकों की नींव पड़ गई। शांतिकुंज में प्रतिष्ठित होने जा रहे पूज्यवर की भाषा में दो छतरियों का निर्माण ऋषियुग्म की जाग्रत चेतना का माध्यम बनने जा रहा था। युगद्रष्टा ही भली भाँति यह जानते हैं और जनसामान्य को दिव्य योजनाओं में निहित कारणों को भली प्रकार समझा सकते हैं, जो आज कितने ही विस्मयपूर्ण प्रतीत होते हों। यही कारण था कि सन् 1982 की वसंत पंचमी तक सजल श्रद्धा-प्रखर प्रज्ञा अपना चैतन्य स्वरूप ले चुका था और अब बारी थी तो प्रज्ञा परिजनों को इस स्थापना के मूलभूत उद्देश्य से अवगत कराने की। अपनी सदा-सदा के लिए शांतिकुंज में उपस्थिति को दृश्य जगत् में बनाए रखने व आमजन को उस कल्याणकारी चेतना से लाभान्वित करने का प्रयोजन इन स्मारकों के माध्यम से पूर्ण होने की बात को पूज्य गुरुदेव ने स्पष्ट किया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

गंगा की गोद में

जुलाई, 1969 का वह प्रसंग फिर याद करें कि उन दिनों शांतिकुंज बन रहा था और गंगा यहाँ से दो-ढाई किलोमीटर दूर तक बहती थी, जिसे आज कदली वन कहते हैं, गंगास्नान के लिए वहाँ जाना पड़ता था। शांतिकुंज का निर्माणकार्य देख रहे परिजनों ने शिकायत की थी—गुरुदेव हमें गंगा स्नान के लिए बहुत दूर जाना पड़ता है।

गुरुदेव ने भरोसा दिया था कि जल्दी ही यह समस्या हल हो जाएगी और इसके कुछ ही दिन बाद गंगा की धारा शांतिकुंज के पास तक मुश्किल से पाँच-सात सौ मीटर दूर तक आ गई। 'सजल श्रद्धा'-'प्रखर प्रज्ञा' जहाँ स्थापित हैं, उनके बारे में गुरुदेव ने बताया था कि इनके नीचे बहुत गहरे में करीब नौ सौ मीटर गहराई में भागीरथी की एक धारा आज भी बहती है।

भूगर्भ विज्ञानी भी इस तथ्य को प्रमाणित करते हैं। विज्ञानियों के अनुसार इस धारा के भागीरथी या किसी और नाम से संबोधित किए जाने का तो कोई प्रमाण नहीं है, लेकिन धारा की आयु कम-से-कम पाँच हजार वर्ष पुरानी जरूर है।

गुरुदेव का कहना था—भगवती गंगा राजा भगीरथ के पीछे-पीछे जिस मार्ग से चली, वह सजल श्रद्धा-प्रखर प्रज्ञा के नीचे से ही गुजरता है। गुरुदेव माताजी की समाधि के पास श्रद्धा सुमन अर्पित करने और ध्यान लगाने वालों में कई को इस तथ्य से जुड़े अनुभव आज भी होते हैं। साधक इन अनुभवों को कभी-कभार अखण्ड ज्योति के लिए भी भेजते हैं।

समाधि के पास अथवा अखंड दीपक के समीप गुरुदेव-माताजी और महाकाल की स्थापनाओं के निकट भी इन अनुभवों की लिखित

पातियाँ छोड़ी, रखी मिलती हैं। 'सजल श्रद्धा'-'प्रखर प्रज्ञा केंद्र' की छतरियाँ उस अवस्था में सभी कार्यकर्त्ताओं के समर्पण, निवेदन का केंद्र बनती रहीं, जब गुरुदेव और माताजी से संपर्क नहीं हो पाता था।

गुरुदेव के महाप्रयाण के बाद इनका महत्त्व विशेष रूप से बढ़ने लगा। 1990 में गायत्री जयंती पर गुरुदेव के महाप्रयाण के बाद उनके पार्थिव अवशेष 'प्रखर प्रज्ञा' में स्वयं माताजी ने स्थापित किए। उस स्थापना के दिन से ही परिजन अपनी व्यथा, भावना, संवेदना और श्रद्धा गुरुदेव के सामने यहाँ व्यक्त करने लगे। गुरुदेव के महाप्रयाण के बाद अश्वमेध यज्ञों की शृंखला आरंभ हुई।

यज्ञों के लिए जाते समय हर बार माताजी 'प्रखर प्रज्ञा' में अपने आराध्य के चरणों में प्रणाम करतीं और रवाना हो जातीं। बड़ौदा अश्वमेध यज्ञ के लिए रवाना होने से पहले एक कार्यकर्त्ता गोष्ठी में वे सहज ही बोल उठीं कि मेरे भगवान प्रखर प्रज्ञा में भस्मावशेषों के रूप में स्थापित हैं। मुझे भी तुम उनके पास ही सजल श्रद्धा में स्थापित कर देना।

नया रूप कुछ दिनों बाद

1992 में उत्तरकाशी में भूकंप आने पर प्रखर प्रज्ञा के ढाँचे में कुछ 'क्रैक्स' आ गए थे। शांतिकुंज में रहने और बाहर के परिजनों की राय बनी कि यह क्षेत्र भूकंप प्रधान बेल्ट में आता है। अक्सर यहाँ भूकंप आते रहते हैं। इसलिए समाधियों को मजबूत आधार देकर बाहर से नया रूप दे देना चाहिए। परिजनों ने उसी समय माताजी से निवेदन किया था। माताजी ने उस समय तो मना कर दिया।

करीब एक-डेढ़ साल बाद बड़ौदा अश्वमेध यज्ञ में जाने से पहले उन्होंने शांतिकुंज में हुई कार्यकर्त्ता गोष्ठी में कहा कि समाधि का आवरण अब बदला जा सकता है, लेकिन कुछ समय बाद। तब मैं भी अपने आराध्य से एकाकार हो जाऊँगी। इस निर्देश में माताजी प्रकारांतर से अपने महाप्रयाण की सूचना भी दे रहीं थीं।

सन् 1992 के बाद वे समाधि के जीर्णोद्धार की स्वीकृति तो देती थीं, लेकिन कुछ समय रुकने को भी कहती थीं। सन् 1993 में उन्होंने इस बारे में स्पष्ट निर्देश दिए थे। चित्रकूट अश्वमेध के लिए जाते समय उसी स्थान पर प्रणाम करने के बाद वे भावविह्वल हो उठीं। इस तरह की विह्वलता उनमें कम ही दिखाई दी। कुछ देर वे खड़ी रहीं और पास खड़े वरिष्ठ कार्यकर्त्ताओं की तरफ मुड़ीं और बोलीं—"अब समय आ गया है कि तुम लोग कुछ दिनों बाद इसे नए सिरे से बनवा दो। स्मृति चिह्न वाले स्थान यथावत् रहें। छतरियों का ढाँचा जर्जर हो गया है, उसे बदल दें।"

माताजी ने उस जगह की ओर देखा जहाँ गुरुदेव के शरीर को अग्नि दी गई थी। उधर देखते हुए कहा—"यहाँ भी पक्का निर्माण करवाना है, लेकिन अभी नहीं। इसी स्थान पर मेरे शरीर को भी यहीं पंच महाभूतों के हवाले कर देना है। इसके बाद ही यहाँ पक्का चबूतरा बनवा देना।" माताजी ने उसी अवसर पर सजल श्रद्धा और प्रखर प्रज्ञा की रूपरेखा खड़े-खड़े ही समझा दी। जिस समय वे रूपरेखा बता रही थीं, उस समय उपस्थित परिजन समय और स्थिति के बोध से शून्य हो गए थे। उन्हें लग रहा था कि माताजी के प्रत्यक्ष और लौकिक सान्निध्य से वंचित होने का समय आ गया है। माताजी उसी संबंध में संकेत कर रही हैं या उसी स्थिति को पढ़ रही हैं।

इस नियति को सुनने में भी अपने आप को असहाय और विचलित अनुभव कर रहे परिजन स्तब्ध थे। स्तब्धता उस समय टूटी, जब माताजी ने कहा कि ठीक है। इसी तरह करना। इस योजना को अंजाम देते समय थोड़ा-बहुत आगा-पीछा करना पड़े तो वह भी देख लेना। कहते हुए माताजी ने

गुरुदेव की समाधि को एक बार फिर प्रणाम किया और आगे बढ़ गईं। परिजन भी अपने भाव में लौटे और माताजी चित्रकूट के लिए रवाना हो गईं।

यात्राओं को विराम

चित्रकूट का महायज्ञ संपन्न होने के बाद माताजी ने अपनी यात्राओं को विराम दिया और अपने आराध्य के दिए निर्देशों के अनुसार सूक्ष्मीकरण की स्थिति में चली गईं। गुरुदेव ने वर्षों पहले लीला संवरण का जो समय बताया था, वह पूरा होने जा रहा था।

सितंबर, 1994 में महाप्रयाण के बाद उनके पार्थिव अवशेष सजल श्रद्धा में स्थापित कर दिए गए। इसके बाद समाधियों के नए और समग्र स्वरूप का आकार लेना शुरू हुआ। गुरुदेव और माताजी का जहाँ अंतिम संस्कार किया गया था, उस चबूतरे को भव्य रूप दिया गया। इसके निर्माण के परिजनों को कारसेवा का अवसर भी दिया गया।

नींव में उस चबूतरे की मिट्टी को कूट-कूट कर भरा गया, जिस पर गुरुदेव और माताजी का अंतिम संस्कार किया गया था। नींव पूरी होने के बाद करीब एक महीने में ग्रेनाइट का स्मारक तैयार हुआ। स्मारक के दोनों ओर गुरुदेव और माताजी के अंतिम संदेश उकारे गए।

उस संदेश के अलावा गुरुदेव की लिखावट में ही गायत्री मंत्र भी अंकित किया गया। गायत्री मंत्र जो गुरुदेव के स्वरूप में समाया हुआ था। योगी देवरहा बाबा के शब्दों में वह गायत्री मंत्र, जिसे मानव रूप में देखें तो आचार्य श्रीराम शर्मा या वह गुरुदेव जिन्हें लिपि के रूप में देखें तो गायत्री मंत्र। समाधियों को आकर्षक और स्थायी रूप दिया गया। ऐसा स्वरूप कि समाधियाँ वर्षों तक सुरक्षित रहें। इतना सुरक्षित और मजबूत कि महाकाल का यह घोंसला अपनी स्थिति अक्षुण्ण बनाए रह सके।

चारों तरफ के स्थान को इतना विस्तार दे दिया गया कि पाँच सौ साधक वहाँ बैठकर ध्यान कर सकें। चारों ओर हरियाली, पुष्प-पादप और सुगंधित यज्ञीय वातावरण साधकों को युगांतर चेतना से जुड़ने में सहायक ही बनते हैं। गुरुदेव और माताजी कहते, आश्वासन देते रहे हैं कि उनका निवास यों तो समूचे शांतिकुंज में है। साधकों की अनुभूति है कि उनके इष्ट-आराध्य की घनीभूत प्राण-ऊर्जा उनके स्मृति अवशेषों के इर्द-गिर्द और भी स्पष्ट रूप में अनुभव होती है। (क्रमशः)

स्वामी रामकृष्ण परमहंस से किसी ने प्रश्न किया—''हमें ईश्वर के दर्शन क्यों नहीं होते ?'' रामकृष्ण परमहंस बोले—''मछली पकड़ना चाहते हो तो उसके लिए वैसी व्यवस्था बनाओ। सिर्फ 'मछली आ जाओ, आ जाओ' कहने से मछली थोड़े ही आ जाएगी। अगर मक्खन खाने का मन है तो 'दूध में मक्खन है, मक्खन है' ऐसा कहने से क्या होगा ? ऐसे ही 'ईश्वर हैं, ईश्वर हैं' ऐसा मात्र बकते रहने से थोड़े ही ईश्वर मिल जाते हैं। उसके लिए साधना करनी पड़ती है। मात्र शब्दों से भगवान को नहीं पाया जा सकता, उसके लिए मेहनत करनी पड़ती है।'' मनुष्य भी अपेक्षित परिणाम पाने के लिए निर्धारित पुरुषार्थ करता नहीं और ऐसे ही लाभ की आकांक्षा करता रहता है।

प्राच्य ग्रंथों में विज्ञान

विज्ञान अनंत की जिज्ञासा है। आदिम मनुष्य भी जिज्ञासु थे। क्यों, क्या, कौन और कहाँ जैसे प्रश्न आधुनिक विज्ञान की ही देन नहीं हैं। वैज्ञानिक प्रश्नाकुलता की सुदीर्घ परंपरा है। यजुर्वेद में 'प्रश्नों' को देवता कहा गया है। वैदिक समाज जिज्ञासु था। ऋग्वेद विश्व का प्राचीनतम ज्ञानकोष है। यहाँ जिज्ञासा है कि 'मरुत्-वायु किस शक्ति से वर्षा करते हैं और किस देश से आते हैं। सूर्य भौतिक सत्य है। जिज्ञासा है कि वह रात्रि में किस क्षेत्र को प्रकाशित करता है?' मजेदार प्रश्न है कि 'सूर्य क्यों नहीं गिरता?'

आधुनिक विज्ञान ने अनेक सौरमंडल जाने हैं। ऋग्वेद का ऋषि जिज्ञासु है कि कितने सूर्य हैं और सागर कितने हैं? संसार-सर्जक देवता का नाम विश्वकर्मा था। ऋषिप्रश्न है कि संसार नहीं था तो विश्वकर्मा ने कहाँ बैठकर संसार बनाया? वे सृष्टि-निर्माण की सामग्री कहाँ से लाए। यहाँ आस्था को सीधे चुनौती है।

ऐसे सैकड़ों प्रश्न ऋग्वेद में हैं। क्या ये वैज्ञानिक नहीं हैं? विज्ञान भौतिक और खगोल का ही अध्ययन है। विज्ञान का जन्म और विकास ऐसी ही प्रश्नाकुल जिज्ञासा से हुआ। ऋग्वेद में मानव चिंतन की प्राचीनतम अवस्था में दर्शन और विज्ञान का जन्म और विश्वास देख सकते हैं, लेकिन भारत के कुछ तथाकथित विद्वानों को प्राचीन विज्ञान शब्द से ही चिढ़ है।

भारतीय विज्ञान कांग्रेस में प्राचीन विज्ञान पर कुछेक परचे पढ़े गए। कुछ विद्वानों ने प्राचीन विमान शास्त्र पर अपना मत रखा। विमान शास्त्र प्राचीन नहीं है। बीसवीं सदी का ही है। आयुर्विज्ञान पर रखे गए मत में सुश्रुत का उल्लेख है। निस्संदेह यह प्राचीन विज्ञान है।

चरक संहिता भी प्राचीन आयुर्विज्ञान है। यहाँ आत्मा को द्रव्य बताया गया है। बेशक आधुनिक चिकित्सा विज्ञान ने शिखर तक उन्नति की है, लेकिन जड़ों की ओर देखना और उनको जाँचना अवैज्ञानिक नहीं हो सकता। ऋग्वेद में विपश्ला का पैर टूटने और कृत्रिम पैर लगाने का उल्लेख है। अथर्ववेद में सफेद बालों को काला करने की दवा खोजने का उल्लेख है। क्या यह आधुनिक वैज्ञानिक से प्रयास में कमतर है? भारतीय काव्य में आकाश मार्ग और विमानों के उल्लेख हैं। विमान की कल्पना के लिए भी वैज्ञानिक चित्त चाहिए। विमान थे या नहीं थे—विषय शोध का है, इतिहास और पुरातत्त्व का है और जहाँ पुरातत्त्व न उपलब्ध हो, वहाँ भाषा विज्ञान और साहित्य का भी है।

प्राचीन भारत अंधविश्वासी नहीं था। ऋग्वेद में प्रकृति के भीतर एक सारभूत नियम व्यवस्था का उल्लेख है। डॉ. रामकृष्णन के अनुसार ईश्वर भी प्राकृतिक संविधान में हस्तक्षेप नहीं कर सकते। प्राचीन विज्ञान में सृष्टि के गोचर प्रपंचों की गहन जिज्ञासा थी। तैत्तिरीय उपनिषद् (उत्तर वैदिक काल) में भृगु को पिता ने बताया कि अन्न ही संपूर्णता है। अन्न से प्राण है।

यहाँ भी कोई अंधविश्वास नहीं है। आगे बताया कि मन ही सब कुछ है और फिर बताया विज्ञान ही सब कुछ है। विज्ञान से ही प्राणी जन्म लेते हैं। जीवित रहते हैं और विज्ञान में ही समा

जाते हैं। यहाँ विज्ञान शिखर है। विज्ञान अर्थात प्रकृति के अकाट्य नियम।

अंत में कहा है कि लेकिन आनंद ही सर्वस्व है। अन्न, मन, प्राण या विज्ञान सबका उद्देश्य आनंद ही है। वैज्ञानिक ज्ञान को मानवकेंद्रित ही होना चाहिए। प्रयोगसिद्धि विज्ञान की प्रमुख कसौटी है। व्यक्तिगत अनुभूति वैज्ञानिक नहीं होती। सार्वजनिक सिद्धता जरूरी है, लेकिन भारी भरकम उपकरण या प्रयोगशालाएँ ही किसी ज्ञानी को विज्ञानी नहीं बनाते।

वैदिक भारत अंधविश्वासमुक्त और जिज्ञासु था। धरती, आकाश और सौरमंडल को जानने-जाँचने को बेचैन था। ऋग्वेद इसका जीवंत साक्ष्य है। इसलिए प्राचीन ज्ञान-विज्ञान को कोरा मिथक कहना राष्ट्रजीवन का सीधा अपमान है। सहमति या असहमति वैज्ञानिक दृष्टिकोण का भाग है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण में ज्ञान की कोई अवस्था अंतिम नहीं होती। ज्ञान निरंतर विकासमान प्रक्रिया है। न प्राचीन विज्ञान पूर्ण था और न ही आधुनिक विज्ञान पूर्ण है। सारा प्राचीन गलत नहीं। सारा आधुनिक भी अंतिम सत्य नहीं। गणित विज्ञान की आत्मा है।

इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार शून्य के अंक का आविष्कार संभवत: हिंदुओं ने किया। लिखा है कि 1 से 10 अंकों के प्रतीक अधिकतर भारत में उत्पन्न हुए। अरबों ने उनका प्रयोग किया। उन्हें हिंदू अरेबिक अंक कहा जाता है।

श्रम का आधार है हाथ और हाथ की उँगलियाँ। वैदिक मंत्रों में 10 उँगलियों का अनेक बार उल्लेख है। भारत में गणित का विकास विश्लेषक प्रतिभा का उत्कृष्ट प्रमाण है। दशमलवपद्धति विश्व को भारत की देन है। शून्य का आविष्कार, स्थान के अनुसार शून्य के प्रयोग द्वारा अंक की मूल्यवृद्धि भारतीय प्रतिभा का चमत्कार है।

गणित और विज्ञान का जन्म भारत में हुआ। 1 के साथ 0 लगाकर बना 10 महत्त्वपूर्ण अंक है। ऋग्वेद के अनुसार 10 दिशाएँ हैं। इंद्रियाँ भी 10 हैं।

विराट पुरुष 10 अंगुल में विश्व घेरता है। 100 अंक का भी उल्लेख है—100 शरद (वर्ष) का जीवन चाहिए। ऋषि के 100 पशु हैं। शून्य वाली संख्या मजेदार ढंग से बढ़ती है। वरुण 100 औषधियाँ रखते हैं और हजार भी। पुरुष सहस्र शिरों वाला, सहस्र पैरों वाला है।

मैक्डनल और कीथ ने वैदिक साहित्य से अनेक संख्याओं का उल्लेख किया है। बीजगणित का विकास यहाँ हुआ। हड़प्पा स्थापत्य प्राचीन रेखागणित का साक्ष्य है।

जर्मन विद्वान डॉ. थॉमस जैफरसन के अनुसार हड़प्पा सभ्यता के मापक यंत्र गणित ज्ञान की गवाही हैं। पृथ्वी की गतिशीलता और गुरुत्व अथर्ववेद में है। वेदों में हजारों वनस्पतियों का उल्लेख है। यहाँ धातु उद्योग भी है। वस्त्र उद्योग भी है।

दूसरों की बुराई, दोषदर्शन और छिद्रान्वेषण अपने ही विकृत आंतरिक जीवन का दर्शन है।

भारत को उसके प्राचीन ज्ञान, विज्ञान पर गर्व है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण हमारा उत्तराधिकार है। मंगल अभियान और परमाणु विज्ञान सहित आधुनिक भारत के वैज्ञानिकों ने बड़ी छलाँग लगाई है। प्राचीन ज्ञान के स्वाभिमान और आधुनिक विज्ञान की ग्राह्यता को बढ़ाते हुए ही भारत का भविष्य उज्ज्वल है।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में विज्ञान का न केवल उल्लेख मिलता है, बल्कि वैज्ञानिक सूत्रों के माध्यम से अद्भुत एवं आश्चर्यजनक प्रयोगों का भी वर्णन वहाँ है। आज इन सूत्रों को सँजोकर मानव कल्याण के लिए उसकी प्रयोगधर्मिता एवं अनुप्रयोग की आवश्यकता है। ❑

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—173

किशोरियों के मानसिक स्वास्थ्य पर शोध

किशोरावस्था मनुष्य जीवन की सबसे संवेदनशील और महत्त्वपूर्ण अवस्था मानी जाती है। इस अवस्था में जीवन के आंतरिक एवं बाह्य- दोनों पक्षों में अत्यंत तीव्र परिवर्तन होते हैं साथ ही शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक स्तर पर घटित होने वाले परिवर्तनों से अनेक तरह के द्वंद्व, संघर्ष और तनाव की स्थितियों का सामना करना पड़ता है।

ऐसे में यदि इस वय में पर्याप्त समायोजन क्षमता, मार्गदर्शन व अन्य सहयोगी बातों का ध्यान न रखा जाए तो किशोरों का जीवन आगे चलकर अनेक तरह की कमियों व समस्याओं का शिकार हो जाता है तथा उनके व्यक्तित्व विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया भी बाधित हो जाती है।

यह अवस्था प्राय: 11 वर्ष से 21 वर्ष के मध्य मानी जाती है। इसी अवधि में व्यक्तित्व के प्रत्येक स्तरों में परिपक्वता विकसित होती है। भावी जीवन की दिशा और दशा का निर्धारण प्राय: इसी अवस्था में हो जाता है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से किशोरावस्था में जो तीव्र मनोशारीरिक परिवर्तन होते हैं उनका कारण हॉर्मोन्स की उत्पत्ति और विकास से जुड़ा है। हॉर्मोन्स में परिवर्तन एवं विकास का सीधा प्रभाव किशोरों के व्यवहार में दिखाई देने लगता है।

किशोर जीवन में समस्या तब उत्पन्न होती है, जब बाह्य और आंतरिक परिवर्तन को वे अपने व्यक्तित्व में समायोजित नहीं कर पाते हैं। भारत जैसे सामाजिक और सांस्कृतिक विविधता वाले देश में तो किशोरों के लिए यह समायोजन की चुनौती और ज्यादा जटिल हो जाती है।

विशेषकर किशोरियों को तो भारतीय समाज एवं परिवेश में जीवनपर्यंत कुछ उसूलों-परंपराओं और सामाजिक तथा नैतिक मुद्दों के साथ सामंजस्य की क्षमता को विकसित करने के लिए कोई प्रशिक्षण तंत्र या अन्य प्रयासों की व्यवस्था समाज में बिलकुल नहीं है। ऐसे में जाने-अनजाने में उनका व्यक्तित्व अनेक समस्याओं से घिर जाता है।

इसके लिए आवश्यक है कि किशोरों-किशोरियों को उनके सहज एवं स्वाभाविक व्यक्तित्व विकास के संदर्भ में उपयुक्त मनोवैज्ञानिक तकनीकों से परिचित कराया जाए और प्रशिक्षित किया जाए। किशोरावस्था में उत्पन्न होने वाली संभावित चुनौतियों और समस्याओं को ध्यान में रखते हुए समुचित एवं समग्र समाधान की खोज एक महती आवश्यकता है।

इस क्षेत्र में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नैदानिक मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत एक विशिष्ट शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है। यह शोधकार्य वर्ष—2018 में शोधार्थी गुंजन शर्मा द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ. दीपक सिंह के निर्देशन में पूरा किया गया है। इस शोध का विषय है—**'डायरी लेखन, स्वाध्याय तथा परामर्श का किशोरियों के मानसिक स्वास्थ्य, संवेगात्मक बुद्धिमत्ता तथा स्वप्रभावकारिता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।'** प्रायोगिक एवं वैज्ञानिक रीति से संपन्न किए गए इस अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा उत्तर प्रदेश के मुजफ्फर नगर जिला में स्थित श्रीराम ग्रुप ऑफ कॉलेज के स्नातक कक्षाओं की 400 किशोरियों का आकस्मिक प्रतिचयन विधि

द्वारा चयन किया गया। ये सभी अलग-अलग विषयों में अध्ययन करने वाली थीं।

सभी चयनितों को पुनः 50-50 के 8 समूहों में वर्गीकृत कर 7 समूह को प्रयोगात्मक एवं 1 समूह को नियंत्रित समूह के रूप में निर्धारित किया गया। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनितों का शोध-उपकरणों के माध्यम से स्वास्थ्य परीक्षण किया गया।

प्रयोग के लिए शोधार्थी द्वारा जिन शोध उपकरणों को प्रयुक्त किया गया, वे हैं—

(1) मैथिस जैरूसलैम तथा रॉफ श्वारजर द्वारा निर्मित एवं सोनाली सूद (2010) द्वारा अनुवादित—'स्वप्रभावकारिता मापनी',

(2) डॉ. शीतला प्रसाद (2009) द्वारा निर्मित—'संवेगात्मक बुद्धिमत्ता मापनी' एवं (3) अरुण कुमार सिंह और अल्पना सेन गुप्ता (2000) द्वारा निर्मित 'मानसिक स्वास्थ्य बैटरी'।

परीक्षण के उपरांत तीन माह की अवधि तक प्रयोग हेतु निर्धारित अलग-अलग समूहों को संबंधित यौगिक व मनोवैज्ञानिक तकनीकों का अभ्यास कराया गया।

इन समूहों के अभ्यास का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—प्रथम समूह (A) की किशोरियों को (प्रतिसप्ताह पाँच दिन) तीन माह की अवधि तक 30 मिनट प्रतिदिन के हिसाब से डायरी लेखन का कार्य करवाया गया। शोधार्थी के अनुसार किशोरियों ने स्वेच्छानुसार अपने विचार एवं भावनाओं को डायरी में लिखा।

उक्त अवधि क्रम में ही दूसरे समूह (B) को प्रतिदिन 30 मिनट स्वाध्याय का अभ्यास कराया गया। स्वाध्याय हेतु अखण्ड ज्योति मासिक पत्रिकाओं एवं पंचतंत्र की कहानियों को प्रयुक्त किया गया। तीसरे समूह (C) को सप्ताह में एक बार 30 मिनट तथा एक बार सामूहिक परामर्श उपचार विधि प्रदान की गई।

चतुर्थ समूह (AB) को 30 मिनट प्रतिदिन डायरी लेखन तथा स्वाध्याय का अभ्यास कराया गया। पंचम समूह (AC) को 30 मिनट प्रतिदिन डायरी लेखन एवं सप्ताह में एक बार व्यक्तिगत व सामूहिक परामर्श प्रदान किया गया। षष्ठ समूह (BC) को 30 मिनट प्रतिदिन स्वाध्याय तथा सप्ताह में एक बार व्यक्तिगत एवं सामूहिक परामर्श प्रदान किया गया। सप्तम समूह (ABC) को 30 मिनट प्रतिदिन डायरी लेखन व स्वाध्याय तथा सप्ताह में एक बार व्यक्तिगत व सामूहिक परामर्श चिकित्सा प्रदान की गई।

इसके अतिरिक्त नियंत्रित समूह की किशोरियों को कोई अभ्यास नहीं कराया गया। प्रयोग की अवधि पूर्ण होने पर पूर्व की भाँति पुनः सभी का स्वाध्याय परीक्षण किया गया तथा परीक्षणों से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणामों के अंतर्गत यह पाया गया कि डायरी लेखन, स्वाध्याय तथा परामर्श—तीनों तकनीकों का स्वतंत्र रूप से तथा सम्मिलित रूप से अभ्यास का किशोरियों के मानसिक स्वास्थ्य, संवेगात्मक बुद्धिमत्ता तथा स्वप्रभावकारिता पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

अतः शोध से प्राप्त निष्कर्षों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शोध में चयनित तीनों विधियाँ किशोरों की समस्याओं एवं चुनौतियों के समाधान एवं इस उम्र की विकास प्रक्रिया को संतुलित और प्रबंधित करने में प्रभावी सिद्ध हुई हैं, अतः इनके नियमित अभ्यास हेतु किशोरों को इनके प्रति प्रेरित एवं सजग किया जा सकता है।

इस शोध अध्ययन का उल्लेखनीय एवं सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि प्रयोग हेतु जो विधियाँ एवं उपचारात्मक तकनीकें चयनित की गई हैं, वे सभी विशिष्ट हैं। डायरी लेखन, स्वाध्याय व परामर्श का संयुक्त एवं एकाकी अभ्यास न केवल किशोर वय के लिए अपितु सभी के लिए अत्यंत लाभकारी

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध

किशोरियों

। डालने

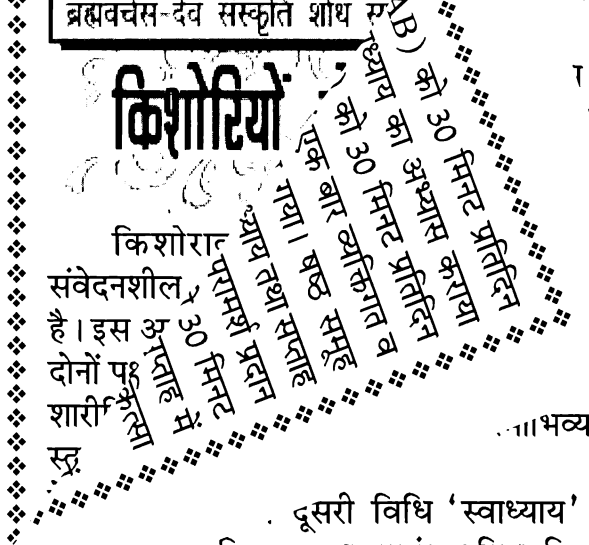

। भी

कर

ंत्र

किशोराव

संवेदनशील

है। इस अ

दोनों प

शारी

स्र

...भिव्यक्ति

. दूसरी विधि 'स्वाध्याय' है। . मानसिक स्वास्थ्य एवं मानसिक विकास का एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसमें उत्तम एवं प्रेरक विचारों से युक्त ग्रंथों-पुस्तकों का नियमित निर्धारित समय पर अध्ययन, चिंतन-मनन करना होता है। इसके अभ्यास से स्वस्थ दृष्टिकोण, सकारात्मक विचार, आत्मप्रेरणा, सजगता, बुद्धिकौशल, निर्णय क्षमता जैसी अनेकों योग्यताएँ व्यक्तित्व में जुड़ जाती हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता है कि व्यक्ति आत्मचिंतन की ओर उन्मुख होकर स्वयं के विषय में तथा परिस्थितियों के संदर्भ में सही समझ के साथ समायोजन करने में समर्थ होता है।

परमपूज्य गुरुदेव ने भी इस विधि को मानसिक परिष्कार का सर्वोत्तम उपाय बताया है। उनके अनुसार आत्मनिरीक्षण के द्वारा आत्मशिक्षण की प्रणाली का नाम ही स्वाध्याय है। यह स्वयं को जानने की, जीवन को पढ़ने की एक सहज किंतु अत्यंत प्रभावी विधि है। इसके तीन पक्ष हैं—अध्ययन, मनन और चिंतन। मनोचिकित्सा के क्षेत्र में मानसिक चिंता, भ्रम, भय, अवसाद, आत्महीनता जैसी कई मनोव्याधियों के उपचार में इस विधि की सहायता ली जाती है।

तीसरी विधि मनोवैज्ञानिक परामर्श की है। इस तकनीक में प्रशिक्षित परामर्शदाता व्यक्ति को स्वयं अपनी समस्याओं के समाधान करने में सहयोग करता है।

इस विधि के जो प्रमुख सोपान हैं, वे हैं—

(i) परामर्शदाता का उनके साथ मधुर संबंध स्थापित करना जिनकी चिकित्सा अथवा सहायता करनी होती है।

(ii) प्रार्थी में स्वयं के प्रति सजगता, जिम्मेदारी और सम्मान की भावना को उत्पन्न करना।

(iii) परामर्श प्रक्रिया के प्रति विश्वास उत्पन्न करना एवं इससे संबंधित आवश्यक समझ उत्पन्न करना।

(iv) उपचारात्मक प्रयोग करना, जिससे व्यक्ति अपनी समस्याओं को पहचानकर उनके समाधान हेतु उत्प्रेरित हो सके।

(v) सहायता के अन्य स्रोतों को प्रयोग विधि में सम्मिलित करना और

(vi) धीरे-धीरे सहज अवस्था की उपलब्धि एवं प्रयोग के सकारात्मक परिणामों से उत्पन्न जानकारी एवं प्रेरणाओं का निष्पादन करना अर्थात परामर्श प्रयोग की उपलब्धि का मूल्यांकन करना। मानसिक स्वास्थ्य में परामर्श की विधि विशेषकर व्यक्तित्व विकास की बाधाओं को दूर करने तथा सामर्थ्यों की अभिव्यक्ति को सहज बनाने में कारगर उपाय के रूप में प्रयुक्त की जाती है।

उक्त तीनों विधियों की विशेषताओं और लाभों को आधार बनाकर ही शोधार्थी द्वारा अपने इस विशिष्ट शोधकार्य हेतु इनका चयन किया गया है। किशोरों के व्यक्तित्व विकास से संबंधित चुनौतियों के समाधान में यह शोध अध्ययन पर्याप्त मार्गदर्शन ही प्रदान नहीं करता है, अपितु उक्त विधियों के रूप में समुचित एवं समग्र समाधान के उपायों को भी प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत करने में सार्थक सिद्ध होता है। ❑

व्यक्तित्व का आधार है व्यवहार

हमारे जीवन के तीन महत्त्वपूर्ण आयाम हैं—चिंतन, चरित्र और व्यवहार। परमपूज्य गुरुदेव ने इन तीनों को संयुक्त रूप से व्यक्तित्व का नाम दिया है। इन तीनों में भी 'व्यवहार' एक ऐसा विशिष्ट आयाम है, जिसके माध्यम से हमारा चिंतन और चरित्र अर्थात संपूर्ण व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है। मन-मस्तिष्क में उठने वाली कल्पनाएँ, सोच, विचार आदि हमारे चिंतन-क्षेत्र का निर्माण करते हैं।

इसी तरह हमारी भावनाओं में घुली-मिली आस्थाएँ, विश्वास, रुचियाँ, प्रवृत्तियाँ, संस्कार आदि मिलकर चरित्र को आकार देते हैं, परंतु इन दोनों की बाह्य जगत् में अभिव्यक्ति का आधार हमारा व्यवहार ही है।

व्यवहार में उक्त दोनों पक्ष—चिंतन और चरित्र, समाहित होकर समाज में हमारे व्यक्तित्व को एक नई पहचान देते हैं। जीवन के सर्वांगीण विकास एवं सफलता में जितनी आवश्यकता चिंतन और चरित्र के निर्माण की है, उतनी ही महत्ता व्यवहार के परिष्कार एवं परिशोधन की भी है।

व्यवहार में कुशलता, सरलता, शालीनता और पवित्रता को सामाजिक दृष्टि से एक उच्चस्तरीय जीवनमूल्य तथा आध्यात्मिक दृष्टि से समस्त साधनाओं का मूल आधार माना गया है। इस संदर्भ में पूज्य गुरुदेव का एक प्रसिद्ध महावाक्य है कि शालीनता बिना मोल मिलती है, परंतु उससे सब कुछ खरीदा जा सकता है अर्थात व्यवहार की सौम्यता, सरलता और मधुरता से व्यक्ति मनोवांछित सफलता और कार्यसिद्धि कर सकता है।

अध्यात्म का क्षेत्र हो अथवा समाज—दोनों में ही अच्छे आचरण और व्यवहारकुशलता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि तात्त्विक दृष्टि से यह अवश्य है कि अध्यात्म-क्षेत्र में व्यक्ति के संस्कार प्रमुख होते हैं और समाज में व्यक्ति के व्यवहार को ही प्रधानता दी जाती है—अध्यात्म संस्कार देखता है और समाज व्यवहार तथापि संस्कार और व्यवहार में गहन अंतर्संबंध होता है।

अच्छे संस्कारों, अच्छे चरित्र से युक्त व्यक्तित्व का व्यवहार भी अच्छा ही होता है, परंतु बुरे संस्कारों, घटिया चरित्र वालों का व्यवहार एवं आचरण सदैव ही निकृष्ट और संकीर्णता को उजागर करता रहता है। चरित्रहीन व्यक्ति किसी स्वार्थ अथवा दबाव या नैतिक-सामाजिक भय से कुछ देर तक अच्छे व्यवहार का चोला ओढ़ भी ले, तब भी देर-सबेर उसका असली चरित्र सामने आ ही जाता है।

अत: आवश्यक है कि अपने भीतर की अच्छे आचरण और व्यवहारकुशलता की आकांक्षा की पूर्ति व्यक्तित्व में अच्छे संस्कारों और चरित्र को आधार बनाकर ही निर्धारित की जाए। आंतरिक व्यक्तित्व में उत्कृष्टता और सरलता आने पर व्यवहार स्वत: ही परिष्कृत और मधुर होता चला जाता है।

हमारा व्यवहार ही समाज में हमारे जीवन व व्यक्तित्व को एक विशिष्ट पहचान देता है। व्यवहार की विशेषताएँ ही हमें औरों से अलग और विशिष्ट बनाती हैं तथा सफलता और असफलता का कारण बनती हैं। यही कारण है कि संसार में जब भी, जहाँ भी किसी सभ्यता और संस्कृति ने जीवनपद्धति का निर्माण किया तो मानवीय व्यवहार को उसका सबसे प्रमुख अंग माना।

व्यवहार के नियंत्रण, प्रबंधन, कुशलता और विकास के जीवन सूत्र विश्व की सभी महान

संस्कृतियों में बिखरे पड़े हैं। पश्चिमी जगत् का तो समूचा नैतिकता का क्षेत्र और जीवन की मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ, मानवीय आचरण एवं व्यवहार की पृष्ठभूमि पर ही खड़े हैं।

हमारे यहाँ तो प्राचीनकाल से ही शुद्ध, सरल और मधुर व्यवहार की कसौटी जीवन-निर्माण की प्राथमिक अनिवार्यता रही है। भारतीय शास्त्रों एवं जीवन सिद्धांतों में स्थान-स्थान पर मानवीय आचरण के परिष्कार एवं विकास के जीवन सूत्र मौजूद हैं।

उल्लेखनीय है कि विश्व के प्राचीनतम ग्रंथ वेदों में हमारे ऋषियों ने आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या के साथ-साथ मधुविद्या को भी महत्त्वपूर्ण माना है। मधुविद्या का सीधा संबंध मधुर व्यवहार एवं आचरण से है। वेदों में मधुरता की विद्या के रूप में इसकी प्रतिष्ठा है। इस विद्या का सार है—स्वयं में मधुर बनना और दूसरों में मधुरता फैलाना।

मंत्रों में यह उपदेश है कि प्रकृति के सभी तत्त्व मधुरता प्रदान करते हैं और जीवन में मधुरता देते हैं, उनमें कहीं राग-द्वेष या घृणा नहीं है। व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र—सभी प्रेम, सुख और शांति चाहते हैं।

सुख और शांति का सबसे सरल उपाय है—जीवन में राग-द्वेष, हिंसा-क्रूरता, स्वार्थ-अहंता आदि का परित्याग कर माधुर्य लाना। व्यवहार की मधुरता से प्रेम, मित्रता, सहानुभूति और आत्मीयता जैसे उच्चस्तरीय व्यक्तित्व के गुण जाग्रत और विकसित होते हैं।

ऐसे दिव्य गुणों की प्राप्ति और समाज में इनका प्रचार-प्रसार ही मधुविद्या का मर्म है, परंतु यहाँ इस सत्य सिद्धांत को भी आत्मसात् करना जरूरी है कि मधुविद्या की प्राप्ति तभी संभव है, जब व्यक्ति चरित्रवान और सात्त्विक संस्कारों से युक्त हो। ऋषियों ने सदाचार, सत्यनिष्ठा और सात्त्विकता जैसे गुणों को ही मधुविद्या का आधार कहा है।

'मधु वाता ऋतायते' —ऋग्वेद- *1/90/6*

'ऋतायते' अर्थात सत्यनिष्ठा, पवित्रता, शुचिता। यह मधुविद्या की प्राप्ति की पहली शर्त है। वेदमंत्रों में कहा गया है कि सत्यनिष्ठ और आचरणनिष्ठ व्यक्ति के लिए वायु मधुर बहती है, समुद्र मधुरता प्रदान करते हैं, सभी वृक्ष-वनस्पतियाँ मधुर फल प्रदान करते हैं, आकाश भी उनके लिए पितातुल्य मधुरता की वर्षा करता है।

'मधु द्यौरस्तु नः पिता' —*ऋग्वेद-1/10/7*

ऐसे व्यक्ति पर समस्त ग्रह-नक्षत्र और देवतागण भी कृपादृष्टि रखते हैं व उसे जीवन में निरंतर सुख-शांति प्रदान करते रहते हैं।

अथर्ववेद का एक सूक्त ही 'मधुविद्या' के अनेकों रूप प्रस्तुत करता है। मधुविद्या सूक्त (अथर्ववेद-1/34/1-5) के पाँच मंत्रों में जो उपदेश समाहित हैं, वे हमारे मानवीय आचरण और व्यवहार को परिष्कृत बनाने वाले अनुपम जीवन सूत्रों के रूप में विद्यमान हैं।

सूक्त का पहला उपदेश है—ईख (गन्ना) में जन्मसिद्ध माधुर्य है व मधुरता की इच्छा वाला इसे बोता और काटता है। ईख के कण-कण में मधुरता है, इसी तरह अपने जीवन को हमें भी मधुरतायुक्त बनाना चाहिए। इस उपदेश का तात्पर्य है कि इस संसार में मधुरता और कटुता, दोनों व्याप्त हैं। हमें मधुरता की इच्छा करनी चाहिए; क्योंकि मनुष्य दोनों में से किसी एक का चयन करने को स्वतंत्र है, अतः मधुरता का चयन ही सर्व विद्या हितकारी है।

मधुरता का चयन जीवन के आचरण और व्यवहार में माधुर्य लाता है। यह मधुरता का व्यवहार व्यक्तिगत जीवन और समाज में सामंजस्य, सद्भाव, प्रेम, सहानुभूति और स्नेह उत्पन्न कर जीवन में सुख, शांति और प्रसन्नता प्रदान करता है।

दूसरा उपदेश है कि हमारी जीभ के अगले और पिछले भाग में मधुरता बनी रहे अर्थात मुँह से

जो भी वचन निकलें, वो मीठे हों। वचनों में थोड़ी भी कटुता न हो। मधुर वचन वशीकरण मंत्र की भाँति होते हैं, जिनसे सारा समाज हमारे अधीन हो जाता है। दूसरों के हृदय में अपना स्थान बनाने के लिए मधुर वचनों से ज्यादा सरल उपाय अन्य कोई नहीं है।

तृतीय उपदेश में कहा गया है कि हमारा घर से बाहर जाना और वापस घर में लौटना मधुरता से पूर्ण हो अर्थात हमारी पूरी दिनचर्या मधुरता से पूर्ण हो। उठना, बैठना, मिलना, बातचीत आदि सभी कार्यों में मधुरता बनी रहे। अधिकांश समस्याओं एवं विवादों का कारण कटु वचन, व्यंग्य, ताना मारना, निंदा आदि हैं। मधुरता इन दुर्गुणों से बचाती है।

चतुर्थ उपदेश में मधु से भी अधिक मधुर हो जाने की प्रार्थना है। मधुरता सभी को प्रिय है, अत: मधुर वाणी और व्यवहार वाले से सभी प्रेमपूर्ण व्यवहार करते हैं और ऐसा व्यक्ति लोकप्रिय भी होता है।

पंचम उपदेश है—अपने चारों ओर मधुरता को फैलाना। यदि मधुरता का प्रचार-प्रसार करना हो तो आवश्यक है कि अपने आस-पास के वातावरण को भी मधुर बनाए रखा जाए। ऐसा करने से जो भी संपर्क में आता है, वह अपनी कटुता और दुर्गुणों को त्यागने पर विवश हो जाता है तथा उसके अपने जीवन में भी मधुरता का संचार होने लगता है।

मधुविद्या के सूक्त मंत्रों का सारांश यही है कि मनुष्य को प्रकृति से मधुर व्यवहार, लोक-कल्याण और सौम्यता की शिक्षा एवं प्रेरणा ग्रहण करनी चाहिए। हमारे मन, वचन, कर्म और व्यवहार में मधुरता होनी चाहिए। व्यक्ति को जहाँ से भी, जैसे भी मधुरता की शिक्षा मिले, उसे ग्रहण कर परिवार, समाज एवं राष्ट्र में मधुरता का प्रसार अवश्य करना चाहिए।

यदि व्यक्ति मधुर व्यवहार से युक्त हो तो उसे समाज में स्नेह, आत्मीयता के साथ-साथ शौर्य, पराक्रम, ओजस्विता और वर्चस्विता जैसी उपलब्धियाँ भी सहज प्राप्त हो जाती हैं। व्यक्तित्व में मधुरता का आकर्षण सर्वोपरि है। ऐसा व्यक्ति जहाँ भी रहता है, वहाँ निरंतर सद्भावना, प्रेम और सहानुभूति का संचार होने लगता है।

उक्त प्राचीनतम विद्या की आवश्यकता हर किसी को है, लेकिन जो सच्चे अर्थों में मधुविद्या के अधिकारी बनना चाहते हैं तो उसकी शुरुआत होती है—मीठे वचनों से।

मानवीय व्यवहार में मधुर भाषा, मीठे शब्दों—वचनों की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। मधुर वाणी के प्रभाव से बिगड़े काम बन जाते हैं, टूटे संबंध जुड़ जाते हैं, रूठे लोग मान जाते हैं। कई बार बड़ी-बड़ी सफलताओं, उपलब्धियों के पीछे मधुर वाणी एवं विनम्र व्यवहार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। ऐसा कहा भी गया है—

ऐसी वाणी बोलिए,
मन का आपा खोय।
औरन को शीतल करे,
आपहु शीतल होय॥

वाणी की मधुरता का गुण कुछ लोगों में जन्मजात होता है, परंतु यह भी सच है कि इसे थोड़े से अभ्यास से हर कोई प्राप्त कर सकता है। अभ्यास इस बात का करना है कि बोलते समय उचित शब्दों का चयन किया जाए और सदैव यह ध्यान रखा जाए कि हमारी वाणी अथवा शब्दों से किसी को भी बुरा न लगे।

वाणी का माधुर्य और शब्दों की गरिमा से हमारा व्यवहार उत्कृष्टता को प्राप्त करता है। चिंतन की प्रखरता और चरित्र की पावनता के साथ यदि सार्थक रूप से व्यवहार की मधुरता संयुक्त हो जाए तो हमारा जीवन एवं व्यक्तित्व—संपूर्णता में विकसित हो उठते हैं। ❑

बेटियों की गरिमा और क्षमता

नारी की अपनी स्वतंत्र गरिमा है। वह सशक्त और सजग भी है। खेलों की दुनिया से लेकर अंतरिक्ष तक, हर क्षेत्र में बेटियों ने अपनी मौजूदगी दर्ज करवाई है। अपनी उपलब्धियों से हर ओर परचम लहराने लगी हैं, परंतु वे जिस सुरक्षा, सम्मान और स्वीकार्यता की हकदार हैं, वे उनके हिस्से नहीं आए हैं।

ऐसा ही प्रेम भरा व्यवहार हमारे घर-आँगन में भी देखने को मिलता है, जिसमें बेटी को बेटे समान कहकर मानो उसके बेटी होने के अस्तित्व पर ही सवाल उठाया जा रहा हो। हमारे यहाँ बेटे-बेटी का फरक आज भी मौजूद है। भेदभाव की यह प्रवृत्ति मानसिकता में कहीं गहराई से जड़ें जमाए है।

आज बेटी होना ही काफी है। उसे बेटे जैसा कहने और मानने की कोई जरूरत ही नहीं। एक बेटी के रूप में वह हर चुनौती पर खुद को साबित करने की शक्ति रखती है। इसीलिए बेटियों के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिए। उन्हें किसी तुलना या अपेक्षा के बोझ तले न दबाकर खुद को निखारने का मौका देना चाहिए।

हमने अपनी बेटी को बिलकुल बेटे जैसा पाला है या हमारी बेटियाँ तो हमारे लिए बेटों से भी बढ़कर हैं—जरा सोचकर देखिए कि ऐसा कहने की जरूरत ही क्यों है? ऐसा कहकर तो मानो हम बेटियों के अस्तित्व को ही नकार रहे हैं। उन्हें कमतर समझ रहे हैं। प्रकृति से मिले उन गुणों को काफी नहीं मान रहे, जो एक इनसान के तौर पर बेटियों को मिले हैं। तभी तो उन्हें बात-बात में बेटों जैसा बनाने की होड़ में शामिल हो रहे हैं।

यह ऐसी होड़ है, जिसकी कोई जरूरत नहीं है। असल में देखा जाए तो बेटियों को आत्मविश्वासी बनाने और जिंदगी की चुनौतियों से सामना करने की हिम्मत देने के लिए उन्हें बेटों जैसा बनाने के बजाय खुद उनके व्यक्तित्व को निखारने की आवश्यकता है।

वे अपने आप में पूर्ण हैं। उनकी लड़कों से तुलना करके उनके जैसा बनाने या मानने की आवश्यकता ही क्या है? लेकिन स्मार्ट पैरेंटिंग के इस दौर में यह बात आम हो गई है, जब बेटियों को बेटों जैसा बनाने की कवायद की जा रही है; जबकि बेटी-का-बेटी होना कोई कमतर बात नहीं है। उसे बेटी के रूप में ही स्वीकार्यता भी मिले और सहयोग भी।

समान अवसर और मान-मनुहार देकर अभिभावक बेटियों को भी शिखर पर पहुँचा सकते हैं। इसीलिए दिखावे की संस्कृति का शिकार हो बेटियों के नैसर्गिक गुणों को खोने न दें। ये उनकी कमजोरी नहीं, बल्कि विशेषताएँ हैं। हमारी बेटी का अपना एक स्वतंत्र अस्तित्व है। वह अपनी इस भूमिका में भी सशक्त और सफल हो सकती है। इसलिए बेटी-को-बेटी ही रहने दें।

लड़की होने के नाते उसके विचार और व्यवहार में जो सौम्यता होनी चाहिए, उससे अपनी लाड़ली

को दूर करने की जरूरत है ही नहीं। इसके लिए आज के समय में लड़कियों को ही नहीं, अभिभावकों को भी आत्मविश्वास और उद्दंडता का अंतर समझना जरूरी है।

आजकल कई घरों में देखने में आता है कि मात्र बराबरी करने के नाम पर बेटी के विचार और व्यवहार की हर बात स्वीकार ली जाती है। ऐसी बातें अपने साथ कई खामियाजे लाती हैं। सफल और सशक्त बनने के लिए बेटियों को बेवजह ही ऐसी व्यवहारगत बातों से न जोड़ें, जो आगे चलकर उनके पूरे व्यक्तित्व और सोच की ही दिशा बदल दे।

बिंदास और बेबाक होना अच्छा है, पर स्त्रीत्व की गरिमा और आत्मविश्वास के माने भी कम नहीं हैं। हमारे परिवेश में यह बात बहुत आम हो चली है कि बेटी को बेटों जैसा बनाकर एक अजीबोगरीब व्यवहार की ओर धकेला जा रहा है। अभिभावकों को यह समझना होगा कि नकारात्मक व्यवहार की छाप या बेवजह का अक्खड़पन महिला हो या पुरुष किसी को भी सही मानों में सशक्त नहीं बना सकता।

आज बेटियाँ घर और बाहर, दोनों जगह अपनी जिम्मेदारी पूरे मन से निभा रही हैं। हर क्षेत्र में और आगे बढ़ रही हैं। ऐसे में ध्यान देने वाली बात यह है कि सफलता के नए शिखर छूने में उनका बेटों जैसा होना कोई भूमिका नहीं निभा रहा तो फिर बेटों जैसा बनने या बनाने की होड़ ही क्यों? ये सफल बेटियाँ बेटे जैसी नहीं हैं, बेटी ही हैं, लेकिन हर बाधा को पार कर अपनी उपस्थिति दर्ज करवा रही हैं।

यही वजह है कि अभिभावक भी बेटियों को सशक्त बनाने के सही माने समझें। यह बात गहराई से समझें कि नारीत्व की गरिमा को समेटे और स्त्रीत्व के रंगों को जीते हुए भी आगे बढ़ा जा सकता है। अपनी एक अलग पहचान बनाई जा सकती है। बेटियाँ अपनी सुरक्षा के लिए कराटे सीख सकती हैं तो रसोईघर में हाथ बँटाना सीखना भी कोई बुरी बात नहीं है। उन्हें समय और परिस्थिति के हिसाब से जीवन से जुड़ना सिखाएँ। यही बात उन्हें सशक्त बनाने और सुरक्षित रखने में सबसे अहम भूमिका निभाएगी।

एक अध्ययन के मुताबिक आज भी घरेलू हिंसा की एक बड़ी वजह बेटियों का जन्म लेना है। अफसोस कि बेटी को बेटे जैसा बनाने के पीछे ऐसे आँकड़े भी एक बड़ा कारण हैं। यों तो अभिभावकों को अपने बच्चों की किसी से भी तुलना नहीं करनी चाहिए, पर अपनी बेटी की तुलना लड़कों से करते रहने की आदत से जरूर बचना चाहिए।

याद रखना चाहिए कि बेटी की अपनी क्षमता और योग्यता है, जिसके दम पर वह बेटी होने के बावजूद भी आगे बढ़ सकती है। बेटी होने से उसकी काबिलियत में कोई कमी नहीं आती है। सच तो यह है कि ऐसी तुलना करने पर तो उसके स्वाभाविक विकास में ठहराव आता है। एक अजीब-सी प्रतियोगिता का भाव उसके मन में घर कर जाता है। कभी-कभी तो ईर्ष्या, स्पर्धा और असुरक्षा की भावना भी पनपने लगती है।

ऐसे में कई बार यह भाव इतनी गहराई से जड़ें जमा लेते हैं कि अपने जीवनसाथी, सहकर्मी या किसी पुरुष रिश्तेदार एवं दोस्त के प्रति भी उनके व्यवहार में सहजता नहीं रहती। एक चाहा-अनचाहा रूखापन आ जाता है। इसीलिए बेटी को बेटा मत बनाइए। अपनी

बेटी को अपने बच्चे के तौर पर बड़ा करें। अपनी ओर से उसके व्यक्तित्व को सोची-समझी दिशा नहीं देनी चाहिए, बल्कि बेटी के रूप में ही उसके अस्तित्व को पूरे मन से स्वीकार करना चाहिए।

अच्छी शिक्षा और फैसले लेने की समझ के साथ ही उसे संस्कारों की भी सीख दें तो वह हर जगह खुद को साबित कर पाएगी। प्रकृति ने महिलाओं को ऐसे कई गुण दिए हैं, जो उन्हें संपूर्ण बनाते हैं। बराबरी के फेर में इन प्रकृतिप्रदत्त गुणों को छोड़ना किसी भी तरह से सही नहीं कहा जा सकता है।

इन्हें सहेजते हुए भी अपनी एक पहचान बनाई जा सकती है। इसीलिए उन्हें बेटा कहने के बजाय आत्मनिर्भर बनाना चाहिए और स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की सुदृढ़ सोच की सौगात देनी चाहिए। संवेदना एवं समझदारी के संग बेटियों का लालन-पालन करना चाहिए। ❑

मई 1958 की एक सर्द सुबह की घटना है। गेरूआ वस्त्र धारण किए हुए एक जर्मन महिला संत विनोबा से मिलने पहुँची। वह संत विनोबा से बोली—"आप यदि एकांत साधना करते तो आपको इसी जन्म में ईश्वरसाक्षात्कार हो जाता, फिर आपने समाजसेवा का पथ क्यों अपनाया?"

संत विनोबा ने उत्तर दिया—"बहन! आज की परिस्थितियों को देखकर क्या आप नहीं समझतीं कि लोग धर्म के नाम पर मंदिरों-मस्जिदों में उपासना की दुहाई देकर, लोगों को गुमराह कर रहे हैं।"

उन्होंने उससे आगे कहा—"भगवान की आराधना उपासना-स्थलों तक ही सीमित क्यों रहे? मनुष्य परमात्मा का वरिष्ठ राजकुमार है और आज जब वह पतित और धर्मच्युत होने लगा है तो उसके पुत्रों को सही राह दिखाने से बढ़कर धर्म का कार्य और क्या हो सकता है?"

संत विनोबा का कथन उस संन्यासिनी की समझ में आ गया। उसने अपने गेरूआ वस्त्रों को त्याग दिया और संत विनोबा के साथ समाजसेवा के क्षेत्र में कूद पड़ी तथा आजीवन मुंबई की गंदी बस्तियों तथा आस-पास के गाँवों में समाज-सुधार का कार्य करती रही।

अपने देश को त्यागकर भारत में साधनात्मक जीवन बिताने के लिए आने वाली उस जर्मन महिला का नाम ल्यूसियेन था, जिसका नाम बदलकर बाद में विनोबा जी ने हेमा बहन रख दिया था। आज समाज को ऐसी ही जागरूक महिलाओं की आवश्यकता है।

युगगीता- 280

क्या है सात्त्विक दान

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की उन्नीसवीं किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के उन्नीसवें श्लोक की व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में भगवान कृष्ण अर्जुन को तामसिक तप के विषय में बताते हुए कहते हैं कि जो तप मूढ़तापूर्वक हठ से अपने को पीड़ा देकर या दूसरों को कष्ट देकर किया जाता है, वह तप तामसिक तप कहलाता है। सात्त्विक तप का आधार निष्कामता एवं निरहंकारिता हैं और राजसिक तप का आधार दंभ एवं अहंकार हैं। इसके विपरीत तामसिक तप का आधार स्व-पीड़ा एवं दूसरे को कष्ट देना है। ध्यान से देखें तो अनेकों लोग इसी स्व-पीड़ा को तप मानकर के बैठ जाते हैं। अपने अहंकार के मद में, मूढ़ता के भाव में निमग्न होकर कुछ लोग अपने को कष्ट देने की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं। कुछ काँटों पर लेट जाते हैं तो कुछ शरीर छेदने लग जाते हैं। वे ये सोचते हैं कि हम कुछ ऐसा कर रहे हैं, जो अन्य कोई नहीं कर सकता। भगवान कहते हैं कि ऐसी सोच मूढ़ता के अलावा और कुछ भी नहीं। ऐसा कहने के पीछे का कारण यह है कि राजसी तप में कम-से-कम व्यक्ति सत्कार एवं प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, परंतु इस मूढ़ता में तो व्यक्ति मात्र सड़क पर लगे तमाशे में बदल जाता है। इसीलिए भगवान कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति जिद्दी एवं हठी भी होते हैं। उन्हें ये अनुभव यदि हो भी जाए कि जो हम कर रहे हैं, वो मूढ़ता है—तब भी अपनी जिद को जीवित रखने के लिए वो, वही सब कुछ करते चले जाते हैं। वे स्वयं को कष्ट देने में एवं दूसरों को तकलीफ देने में ही निमग्न रहते हैं। इस तरह के व्यक्तियों के लिए वे कहते हैं कि ऐसा व्यक्ति तामसिक तप को करता है।

सारांश में भगवान यहाँ यह कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति को दूसरों को दुःख देने में भी ऐसा ही रस मिलता है। तामसिक व्यक्ति दूसरे को दुःख देने में अपना सुख मानता है। राजसिक व्यक्ति स्वयं को सुख देने में सुख मानता है; जबकि सात्त्विक व्यक्ति दूसरों को सुख देने में अपना सुख अनुभव करता है।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि—

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥20॥

शब्दविग्रह—दातव्यम्, इति, यत्, दानम्, दीयते, अनुपकारिणे, देशे, काले, च, पात्रे, च, तत्, दानम्, सात्त्विकम्, स्मृतम्।

शब्दार्थ—दान देना ही कर्त्तव्य है (**दातव्यम्**), ऐसे भाव से (**इति**), जो (**यत्**), दान (**दानम्**), देश (**देशे**), तथा (**च**), काल (**काले**), और (**च**), पात्र के प्राप्त होने पर (**पात्रे**), उपकार न करने वाले के प्रति (**अनुपकारिणे**), दिया जाता है (**दीयते**), वह (**तत्**), दान (**दानम्**), सात्त्विक (**सात्त्विकम्**), कहा गया है (**स्मृतम्**)।

अर्थात दान देना हमारा कर्त्तव्य है, ऐसे भाव से जो दान देश तथा काल और पात्र के प्राप्त होने

पर अनुपकारी को अर्थात निष्काम भाव से दिया जाता है, वह दान सात्त्विक कहलाता है। इस दान का तात्पर्य त्याग के भाव के साथ है; क्योंकि यह दान हमारे जगत् के साथ, संसार के साथ संबंध-विच्छेद का आधार बनता है अथवा यों कहें कि मुक्ति के भाव को प्रगाढ़ करता है।

यहाँ सात्त्विक दान को भगवान परिभाषित करते हैं और उसकी परिभाषा देते समय में कहते हैं कि सात्त्विक दान दो दृष्टियों से परिभाषित होता है।

पहला, दान को व्यक्ति अपना कर्त्तव्य मान कर करे। जितना मेरे लिए आवश्यक था, वह मैंने रखा, शेष को अपना न मानते हुए जरूरतमंद को देने का भाव—सात्त्विक दान का पहला आधार है।

वह दान करने से मुझे क्या मिलेगा या नहीं मिलेगा, प्रत्युत्तर में दूसरा मुझ पर उपकार करेगा या नहीं करेगा, इन सब पर चर्चा करे बगैर, इन सबकी चिंता किए बिना जो दान दिया जाता है, वह दान सात्त्विक दान कहलाता है।

अनुपकारी को देने का मतलब यह नहीं कि उपकारी को न दिया जाए, बल्कि उसका अर्थ यह है कि उपकार की आकांक्षा किए बगैर दान दिया जाए। इसी को पातंजल योगसूत्र में अपरिग्रह से संबंद्ध करते हुए कहा है कि—

अपरिग्रहः विषयाणाम् अर्जनरक्षणक्षय संग्रहिंसादोषदर्शनात्।

अर्थात अपरिग्रह का अर्थ विषयों अर्थात भोगपदार्थों के कमाने रूप के दोष, कमाए गए को बचाने रूपी दोष, नष्ट होने का दोष, आसक्तिकारक होने का दोष और परपीड़ा रूप का दोष दिखाई पड़ने से इन विषयों को ग्रहण ही न करना अपरिग्रह है और जो ग्रहण हो चुका है, उसे दे देना दान है।

भगवान सात्त्विक दान का प्रथम आधार तो यह बताते हैं कि व्यक्ति यह सोचते हुए दान दे कि दान देना कर्त्तव्य है। इस संदर्भ में अब्दुर्रहीम खानखाना एवं कवि गंग के मध्य का एक घटनाक्रम स्मरणीय है। अब्दुर्रहीम खानखाना अकबर के दरबार में नवरत्न के रूप में कार्यरत थे। अनेकों बार अकबर उनकी कविता से प्रसन्न होकर उनको हीरे-जवाहरात दे दिया करते थे, परंतु अब्दुर्रहीम खानखाना उन रत्नों को तुरंत वितरित कर दिया करते थे। उनकी आदत थी कि रत्न वितरित करते समय आँखें बंद कर लिया करते थे।

एक बार कवि गंग उनसे मिलने पहुँचे। उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति अब्दुर्रहीम खानखाना से रत्न लेने के लिए नौ बार पंक्ति में लग चुका है। चूँकि उनकी आँखें बंद थीं, अतः उसे बार-बार पंक्ति में लग जाने का अवसर भी मिल रहा था। यह दृश्य देखकर कवि गंग से रहा न गया और उन्होंने कविता में अब्दुर्रहीम खानखाना को चेताना चाहा।

वे बोले—

कहाँ से सीखी नवाबजूँ ऐसी देनी देन।
ज्यों ज्यों कर ऊपर उठें त्यों त्यों नीचे नैन॥

अर्थात पहली बार देने का ऐसा तरीका देख रहा हूँ, जिसमें आपके हाथ तो देने के लिए उठे हुए हैं, पर आँखें नीचे को हैं।

अब्दुर्रहीम खानखाना उनके अभिप्राय को समझते हुए बोले—

देनहार कोई और है जो देता दिन रैन।
लोग भरम मो पर करें ताते नीचे नैन॥

अर्थात देने वाला तो भगवान है, जो सबको देता है। लोग यह सोचते हैं कि मैं दे रहा हूँ, इसलिए नजरें नीची करके दे रहा हूँ। भगवान के प्रति यही समर्पण अपरिग्रह को जन्म देता है।

दूसरा, भगवान कहते हैं कि '**देशे काले च पात्रे च**'—अर्थात जिस देश में जो चीज नहीं है और उस चीज की आवश्यकता है तो वहाँ उस चीज को दे देना, साथ ही जिस समय जिस चीज या वस्तु की आवश्यकता है, उस समय वह वस्तु दे देना एवं जिसके पास जो वस्तु नहीं है, उस अभावग्रस्त को वह वस्तु दे देना। इन गुणों के पूर्ण होने पर भी वह दान सात्त्विक दान कहलाता है।

सात्त्विक दान देने के पीछे का भाव एक ही है कि व्यक्ति इस भाव के साथ जीवन जिए कि संपूर्ण सृष्टि की जितनी वस्तुएँ हैं, वे सबकी हैं और सबके लिए हैं। हमारी व्यक्तिगत नहीं हैं। इस भाव के साथ जीवन जीने वाला और दान देने वाला व्यक्ति फिर सात्त्विक दान देता है और उसका दिया दान, उसके संसार से संस्कारों को विच्छेद करने का कारण भी बनता है। (क्रमशः)

यूनान देश में हेलाक नामक एक अत्यंत लोभी, क्रूर व ठग सेठ रहा करता था। उसकी पुत्रवधू हेली अत्यंत धर्मपरायण थी। वह उसे समझाया करती थी कि अन्याय से कमाया गया धन व्यर्थ जाता है और न्यायपूर्वक कमाया गया धन ही फलित होता है, परंतु सेठ पर उसके कहे का कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। पुत्रवधू के बार-बार कहने पर एक दिन उसने न्याय से धन कमाकर एक सोने की अशरफी बनाई और उस पर अपनी मुहर लगाकर, उसे कपड़े में बाँधकर चौराहे पर छोड़ आया। कुछ दिन वह मुहर वहीं पड़ी रही।

एक दिन किसी ने उसे कपड़े सहित उठाकर नदी में फेंक दिया, जहाँ उसे एक मछली निगल गई। कुछ दिन बाद उस मछली को कुछ मछुआरों ने पकड़ लिया। उन मछुआरों ने जब मछली का पेट चीरा तो उसमें से सोने की अशरफी निकली। अशरफी पर सेठ की मुहर देखकर मछुआरे उसे सेठ को सौंप आए। अपनी अशरफी वापस पाकर सेठ अत्यंत आश्चर्यचकित हुआ। उसे विश्वास हो गया कि यदि धन का अर्जन न्यायपूर्वक एवं सही नीति से किया गया है तो वह कहीं जाता नहीं है, बल्कि लौटकर अर्जन करने वाले के पास ही आ जाता है। उसकी पुत्रवधू ने उसे इस घटना से जीवन के लिए सही नीति निर्धारित करने के लिए प्रेरित किया और हेलाक के जीवन की दिशा इस घटना के उपरांत सदा के लिए बदल गई। उसने अन्यायपूर्वक धन कमाने की राह हमेशा के लिए छोड़ दी और ईमानदारी से जीवनयापन करने में लग गया।

सोशल मीडिया और मानसिक स्वास्थ्य

सोशल मीडिया आज जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है, विशेषकर कोविड महामारी के बाद जब पूरे विश्व का जीवन घर की चहारदीवारी में सिमटकर रह गया था। तब जहाँ यह एकदूसरे से जुड़ने का माध्यम बना, पढ़ाई से लेकर घटनाओं से जुड़े रहने में सहायक रहा, विषम समय में मनोरंजन का साधन बना, लेकिन वहीं इसका अत्यधिक उपयोग आज कई तरह के नकारात्मक प्रभावों के साथ सभी के लिए चिंता का विषय बना हुआ है।

सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग अकेलापन, अवसाद, उद्विग्नता से लेकर आत्महत्या का कारण बन रहा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार सोशल मीडिया की चकाचौंध से प्रभावित 25 प्रतिशत लोग स्वीकार करते हैं कि सोशल मीडिया का मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा है।

कोविड महामारी के दौरान मानसिक स्वास्थ्य से पीड़ित लोगों की संख्या 66% हो गई थी। एक्सप्रेस वीपीएन की सन् 2021 की रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका में 88% व्यक्तियों ने सीधे तौर पर यह स्वीकारा था कि सोशल मीडिया खुशी एवं आत्मछवि पर नकारात्मक प्रभाव डालता है; जबकि कुछ लोगों ने इसके कारण चिंता, अकेलेपन और अवसाद की बात स्वीकारी।

अमेरिका, इंग्लैंड, ऑस्ट्रेलिया, नॉर्वे में हुए क्रॉस- नेशनल ऑनलाइन सर्वेक्षण के दौरान पाया गया था कि कोरोना महामारी के दौरान अकेलेपन को कम करने व मनोरंजन के लिए सोशल मीडिया के उपयोग का मानसिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा।

सोशल मीडिया से उत्पन्न एक प्रमुख विकार फोमो अर्थात फीयर ऑफ मिसिंग आउट माना जा रहा है। जब कोई सोशल मीडिया में दूसरों को अपने से बेहतर पाता है, उसे मनोवांछित लाइक्स आदि नहीं मिलते, तो उसे लगता है कि जीवन में कुछ कमी है। आपसी तुलना होने लगती है व ऐसे में व्यक्ति अवसाद व चिंताग्रस्त हो जाता है।

जिन व्यक्तियों के कम फालोअर होते हैं, वे अवसाद में चले जाते हैं तथा खाने की समस्या से पीड़ित हो जाते हैं। इसके साथ उनका आत्मसम्मान प्रभावित होता है, उद्विग्नता का भाव जाग्रत होता है और अपने खाली स्थान को भरने के लिए सोशल मीडिया के अत्यधिक उपयोग की ओर प्रेरित होते हैं।

इसका एक अन्य कारण रहता है—डोपामाइन नाम के जैविक रसायन का स्राव। जब अपनी पसंद की चीजें या व्यवहार सोशल मीडिया पर उपलब्ध होता है, तो डोपामाइन स्रावित होता है, जो तात्कालिक संतुष्टि की अनुभूति देता है, जो उस पर वापस जाने के लिए उकसाता है।

इसके वशीभूत सोशल मीडिया पर स्क्रॉल करते हुए, इसे खँगालते हुए व्यक्ति इतना मग्न हो जाता है कि उसे समय का भान नहीं रहता। इस दौरान तन-मन पर पड़ रहे इसके नकारात्मक प्रभाव के प्रति भी सचेष्ट नहीं रह पाता, जो बाद में अपना सर उठाते हैं। इसके परिणामस्वरूप स्क्रीन टाइम बढ़ने से नेत्रों से लेकर मन-मस्तिष्क पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। आँखों में आँसू आने लगते हैं, कुछ की तो नजर तक कमजोर हो जाती है व आँखों में सूखेपन की समस्या प्रारंभ हो जाती है।

कुछ को तो हर मिनट फोन को चैक करने की बीमारी लग जाती है। जैसे ही कोई नोटिफिकेशन की घंटी बजती है, वे स्वयं को मोबाइल में झाँकने के लिए बाध्य अनुभव करते हैं, यहाँ तक कि वाहन चलाते समय तक। रात को सोते समय सोशल मीडिया को देखते-देखते बिस्तर में जाते हैं, रात को नींद खुलने पर पुन: झाँकते हैं, प्रात: इसी तरह दिनचर्या की शुरुआत होती है व नींद अधूरी रह जाती है।

ऐसे में अस्त-व्यस्त दिनचर्या, दैनिक कार्यों में लेट-लतीफि के साथ मन उचटा-उचटा-सा रहता है और किसी काम में मन एकाग्र नहीं हो पाता। स्मरणशक्ति क्षीण हो जाती है। सोशल मीडिया की लत का शिकार व्यक्ति आभासी दुनिया में जीने लगता है और वास्तविकता से उसका नाता कटने लगता है।

कई तो अंतहीन सेल्फी के साथ आत्ममुग्धता की पराकाष्ठा को पार कर जाते हैं व व्यक्तित्व के हलकेपन को प्रदर्शित करते हैं। मन के गहनतम भाव व जीवन के व्यक्तिगत पहलुओं तक को सोशल मीडिया में शेयर करने की भूल करते हैं। सोशल मीडिया पर बढ़े-चढ़े दोस्तों की संख्या होने का भ्रम होता है, लेकिन यथार्थ में बहुत कम दोस्त होते हैं, जो आवश्यकता पड़ने पर सुख-दु:ख में भागीदार बनते हैं।

इसके साथ व्यक्ति दोहरा जीवन जीने के लिए बाधित होता है। अधिक लाइक्स पाने के लिए एवं अपने स्टेटस को बनाए रखने के लिए नए-नए तौर-तरीके अपनाता है। वास्तविकता अंदर कुछ होती है, लेकिन बाहरी प्रदर्शन कुछ और करना पड़ता है। इससे अंदर हीनता व असंतोष का भाव पनपता है, हकीकत के सामने आने पर बाहर से भी भर्त्सना मिलती है। कुल मिलाकर ऐसे में तनाव से लेकर नाना प्रकार के मनोरोग व्यक्ति को आ घेरते हैं।

कुछ लोग साइबर बुलिंग के भी शिकार हो जाते हैं। 10% किशोरों को इसका शिकार होते देखा जाता है, जिसके चलते उन्हें आक्रामक संदेश सुनने पड़ते हैं, हिंसक व्यवहार का सामना करना पड़ता है, जिसके कारण वे भावनात्मक जख्म लिए घूमते हैं। सोशल मीडिया का अत्यधिक उपयोग शराब, कैफीन व निकोटिन जैसे नशों की तरह काम करता है। इसकी मानसिक तलब रह-रहकर व्यक्ति को पीड़ित करती है।

इस तरह अपनी तमाम तरह की उपयोगिता के बावजूद सोशल मीडिया का उपयोग चिंता का विषय बन जाता है, जब व्यक्ति सोशल मीडिया पर सामान्य से अधिक समय देने लगता है। परिवार-समाज एवं ऑफिस में भी सोशल मीडिया को झाँकने की लत से बाज नहीं आ पाता और दूसरों से अनावश्यक रूप में अपनी तुलना करने लगता है।

परिणामस्वरूप पढ़ाई-लिखाई, ऑफिस के कार्य प्रभावित होते हैं तथा नियमित रूप से कुछ पोस्ट करने, लाइक्स, कमेंट्स व त्वरित प्रतिक्रिया के लिए दबाव अनुभव होता है। सोशल मीडिया में व्यक्ति इतना उलझ जाता है कि अपने लिए समय ही नहीं निकाल पाता। अपने जीवन की दशा-दिशा व इसकी बेहतरी के लिए क्या करना है, इसके बारे में सोच नहीं पाता।

दूसरों की प्रशंसा पाने के लिए अहितकर, अवांछनीय व आत्मघाती कंटेट डालता है, जो बाद में चिंता व परेशानी का कारण बनते हैं। अस्त-व्यस्त दिनचर्या के साथ व्यक्ति अनिद्रा का शिकार हो जाता है और आभासी जीवन में उलझकर व्यावहारिक जीवन से अलग-थलग अनुभव करता है। इस तरह सोशल मीडिया मानसिक स्वास्थ्य के लिए धीमा जहर साबित होता है।

जीवन के खालीपन को भरने के लिए जिस सोशल मीडिया का सहारा लिया जाता है, वह प्रारंभ में एक बैसाखी का काम करता है, इस पर

निर्भरता बढ़ती जाती है और यह धीरे-धीरे एक कमजोरी बन जाती है और एक दिन एहसास होता है कि जैसे जीवन की बागडोर सोशल मीडिया के हाथों में आ गई है। ऐसी अवस्था में सोशल मीडिया के इस चँगुल से बाहर निकलना कठिन हो जाता है।

अनुभवीजनों का कहना है कि सोशल मीडिया का समय सीमित करने पर उपरोक्त स्थिति से बहुत कुछ बाहर निकला जा सकता हैं। साथ ही इसका बेहतरीन उपयोग करने पर अतिरिक्त अनेकों लाभों को हस्तगत किया जा सकता है। इस दिशा में कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य इस प्रकार किए जा सकते हैं।

सबसे पहले यह जानें कि नियमित कितना समय सोशल मीडिया पर बीत रहा है, फिर उसको कम करें। दिन के कुछ समय मोबाइल फोन को बंद रख सकते हैं या इसे फ्लाइट मोड में रख सकते हैं। कार्य करते समय, किसी मीटिंग के समय, वाहन चलाते समय या परिवारजनों के बीच इसे बंद रखें। अपने शयन कक्ष से मोबाइल को दूर ही रखें। सोशल मीडिया नोटिफिकेशन को भी बंद रख सकते हैं, जिससे ध्यान बँटाने वाले अनावश्यक संदेशों की बाढ़ से बच सकें।

यदि हर मिनट मोबाइल चैक करने की आदत है तो इसका समय 20 मिनट से आधा घंटा, फिर एक घंटा आदि तक बढ़ा सकते हैं। सोशल मीडिया एप्स मोबाइल से हटा सकते हैं, इन्हें कंप्यूटर या लैपटॉप पर देख सकते हैं। इस तरह सोशल मीडिया का समय कम किया जा सकता है, जिसके कुछ लाभ प्रत्यक्ष रहते हैं। जब किसी से तुलना नहीं होगी तो किसी से कमतर होने का अनुभव भी नहीं होगा। अवसाद और तनाव दूर रहेंगे तथा मूड खराब नहीं होगा। रोज-रोज आत्मप्रदर्शन की चिंता नहीं रहेगी कि आज क्या पोस्ट करना है। ऐसा कर पाने पर जीवन सरल बनेगा और बचे हुए समय का नियोजन उत्पाद कार्यों में किया जा सकता है।

एक सर्वेक्षण के अनुसार सोशल मीडिया का समय थोड़ा कम करने के प्रभाव सकारात्मक आते हैं, मानसिक स्वास्थ्य बेहतर होता है। यह समय 30 मिनट भी कम किया जाए व इसके स्थान पर 30 मिनट व्यायाम या शारीरिक गतिविधि को जोड़ा जाए, तो 53% लोगों ने स्वीकार किया कि सोशल मीडिया का उपयोग कम करने से मानसिक स्वास्थ्य में काफी सुधार हुआ।

इसके साथ मोबाइल के बाहर मनोरंजन के और स्वस्थ तौर-तरीके खोजे जा सकते हैं। परिवार, दोस्तों व शुभचिंतकों के साथ अधिक समय बिताएँ।

विकृतियाँ दिखती भर ऊपर हैं, पर उनकी जड़ें अंतराल की कुसंस्कारिता के साथ जुड़ी रहती हैं। यदि इस क्षेत्र को सुधारा, सँभाला, उभारा जा सके तो समझना चाहिए कि चिंतन, चरित्र, व्यवहार बदला और साथ ही उच्चस्तरीय परिवर्तन भी सुनिश्चित हो पाया।

— परमपूज्य गुरुदेव

एकांत में समय दें, अच्छी पुस्तकों का अध्ययन करें, आत्मसमीक्षा करें व अपने व्यक्तित्व निर्माण की योजना बनाएँ। प्रतिदिन इसकी बेहतरी के लिए कार्य करें। किन्हीं उपयोगी सामाजिक कार्यों में हाथ बँटाएँ।

इन उपायों के साथ सोशल मीडिया से जुड़े नकारात्मक प्रभाव काफी हद तक सीमित हो जाएँगे व इसका श्रेष्ठतम उपयोग बन पड़ेगा। मानसिक स्वास्थ्य एवं संतुलन सधने लगेगा, कार्यक्षमता बढ़ेगी और जीवन अधिक सुखी, सफल व संतुष्टि लिए होगा। ❑

नई शिक्षा नीति से जुड़े हमारे दायित्व

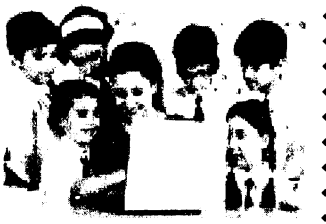

आज हम ऐतिहासिक पलों से गुजर रहे हैं। निस्संदेह रूप में ये परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में कहे परिवर्तन के महान क्षण हैं, जब उभरते भारत की गूँज पूरे विश्व गगन में गूँज रही है। आर्थिक-राजनीतिक क्षेत्र हो या सैन्य विकास के साथ विश्व-शांति का क्षेत्र, हर दिशा में नए प्रतिमान स्थापित हो रहे हैं। फिर शिक्षा के क्षेत्र में भला वह कैसे पीछे रह सकता है। ये सब महाकाल की योजना का हिस्सा हैं कि भारत की विश्व के प्रकाशस्तंभ की भूमिका तय है।

उसे ज्ञान के क्षेत्र में पुनः विश्वगुरु, जगद्गुरु के रूप में अपनी भूमिका निभानी है, लेकिन कार्य इतना सरल भी नहीं, शिक्षा-क्षेत्र में बहुत कुछ किया जाना शेष है। हर स्तर पर इससे जुड़े लोगों का भावभरा योगदान अपेक्षित है, विशेषकर शिक्षकों का अपनी गरिमामयी भूमिका निभाने के लिए आगे आने का समय है। भारत सरकार द्वारा प्रतिपादित नई शिक्षा नीति-2020 में शिक्षा की एक समग्र एवं महत्त्वाकांक्षी योजना का खाका खींचा गया है, जो विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालय स्तर पर लागू होना प्रस्तावित है।

कई स्तर पर इसमें कार्रवाई प्रारंभ हो चुकी है, जिसमें धीरे-धीरे स्पष्टता आ रही है। दो-चार वर्षों में धुंध छँट जाएगी व इसके सुखद परिणाम अगले चार-छह वर्षों में आने प्रारंभ हो जाएँगे। जिस शिक्षा दर्शन का प्रतिपादन नई शिक्षा नीति में किया गया है, वस्तुतः वह हमारी संस्कृति की शिक्षा-परंपरा में पूर्व में प्रचलित रही है।

गुरुकुल-प्रणाली में ऐसे ही ज्ञान-विज्ञान में निष्णात, सर्वांगीण विद्यार्थी तैयार होते थे, जो आगे चलकर सद्गृहस्थ बनकर समाजसेवा करते हुए राष्ट्र का नेतृत्व करते थे, अपने-अपने क्षेत्रों में नित-नूतन शोध-अनुसंधान के साथ युगाकाश को आलोकित करते थे। नालंदा-तक्षशिला विश्वविद्यालय इसी परंपरा के गौरव थे, जहाँ विश्व के कोने-कोने से भारतीय ज्ञान-विज्ञान की परंपरा में शोध-अध्ययन के लिए विद्यार्थी एवं ज्ञान-पिपासु आते थे।

आज पुनः इसकी पुनरावृत्ति की दिशा में कदम बढ़ रहे हैं। नई शिक्षा नीति में इसकी समग्र योजना प्रस्तुत है, जिसको मूर्त रूप देने के लिए हर स्तर पर भागीरथी प्रयास अभीष्ट हैं, जिनके सरंजाम जुटाने के लिए सभी को तैयार रहना होगा।

नई शिक्षा नीति में कौशलयुक्त युवाओं को गढ़ने की बात पर जोर दिया गया है, जो अपने विषय का सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक ज्ञान रखते हों व अपने विषय के ज्ञान को समाज व युग की समस्याओं के निराकरण हेतु नियोजित कर सकें। उनमें इतना ज्ञान व कौशल हो कि वे रोजगार के लिए सरकार का मुँह न ताकते रहें, बल्कि अपने दम-खम पर रोजगार का सृजन करते हुए अन्य कइयों को रोजगार दिलवा सकें।

इसके साथ अपनी रुचि की विधाओं को पढ़ते हुए अपनी बौद्धिक समझ को विस्तृत कर सकें। अपनी रुचि के मुख्य विषयों के साथ अन्य मनोनुकूल विषयों के चयन की सुविधा भी इसमें दी गई है। भाषा के आधारभूत ज्ञान पर इसमें बल दिया गया है, जिससे आगे चलकर क्षेत्रीय, राष्ट्रीय

एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर साहित्य एवं संस्कृति को समझकर अपने ज्ञान का प्रसार कर सकें।

विद्यार्थी इन भाषाओं के आधारभूत ज्ञान के साथ उसके साहित्य को पढ़ सकेंगे। उसमें मौखिक एवं लिखित रूप से प्रभावी संवाद कर सकेंगे। साथ ही इसमें तकनीकी ज्ञान पर भी जोर है। संचार-क्रांति, इंटरनेट व सोशल मीडिया के युग में डिजिटल साक्षरता एक मूलभूत आवश्यकता बन गई है, जिससे युवा अपने दैनिक जीवन में इनका कुशलतापूर्वक उपयोग कर सकें।

आज के युग में डिजिटल साक्षरता के बिना सामान्य जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। शिक्षा के क्षेत्र में भी यह विशेष रूप से लागू होता है। अपनी पढ़ाई को पूरा करने के लिए विद्यार्थियों के पास ऑनलाइन पाठ्यक्रमों के चयन की भी सुविधा दी गई है। इन सबके साथ भाव है कि विद्यार्थियों में अपने देश, संस्कृति व समाज की समझ विकसित हो तथा वे अपने गौरवपूर्ण अतीत के साथ इसकी विविधता में एकता के स्वरूप को हृदयंगम कर सकें।

आत्मवत् सर्वभूतेषु, वसुधैव कुटुम्बकम् के दर्शन को आत्मसात् करते हुए अंतर-सांस्कृतिक समझ को विकसित कर सकें, जो आज के वैश्विक युग में, सांस्कृतिक टकराहट भरे वातावरण में शांति व सौहार्दपूर्ण अस्तित्व के लिए अभीष्ट है। नई शिक्षा छात्र-छात्राओं को श्रेष्ठ, सर्वांगपूर्ण, राष्ट्रभक्त एवं वैश्विक नागरिक तैयार करने के लिए तत्पर है, जो स्थानीय स्तर से लेकर वैश्विक स्तर पर अपनी सार्थक भूमिका निभा सके।

पूज्य गुरुदेव प्रारंभ से ही इस शिक्षा-दर्शन का प्रतिपादन करते आए हैं। उनके साहित्य में वैज्ञानिक अध्यात्म से लेकर शिक्षा-विद्या व आध्यात्मिक समाजवाद एवं मानवतावाद आदि के रूप में सर्वांगपूर्ण शिक्षा-दर्शन की गूँज है।

इसमें विद्यार्थियों को अपने विषय की जानकारी के साथ जीवनपर्यंत एक विद्यार्थी की भूमिका में रहने के लिए प्रेरित किया गया है तथा 21 सदीं के अनुरूप गुणों व कौशल को विकसित करने की बात भी कही गई है। व्यवहार में समझदारी, ईमानदारी, जिम्मेदारी, शालीनता-सहकारिता जैसे सद्गुणों के विकास पर भी पुरजोर बल दिया गया है।

ऐसे में शिक्षकों का दायित्व बढ़ जाता है। उन्हीं के कंधों पर नई शिक्षा नीति में निहित दर्शन व चिंतन को क्रियान्वित करने का दायित्व है। इसमें जहाँ परिणाम आधारित शिक्षापद्धति में निर्धारित परिणामों के अनुरूप स्वयं को गढ़ने व इसे विद्यार्थियों तक संप्रेषित करने की चुनौती है तो वहीं अपनी दक्षता के आधार पर अपने योगदान का सुअवसर भी है।

कुविचारों और दुर्भावनाओं के काम, क्रोध, लोभ और मोह के बंधनों को तोड़ डालने का नाम ही मुक्ति है।

इसके लिए विद्यार्थियों के साथ सह-शिक्षकों को भी प्रेरित एवं प्रोत्साहित करने की आवश्यकता है। योजना बहुत बृहत्तर है, जो मिल-जुलकर टीम भावना के साथ ही पूरी हो सकती है। नई शिक्षा नीति को लागू करने में प्रबंधन तंत्र की भूमिका भी अहम हो जाती है। उनसे इस संबंध में उदार सहयोग की अपेक्षा की जाती है, जिससे कि इसके सफल क्रियान्वयन हेतु अतिरिक्त भौतिक एवं मानव संसाधन की आवश्यकता की पूर्ति सहजता से हो सके।

निस्संदेह ये ऐतिहासिक पल हैं, जब शिक्षा के क्षेत्र में भारतवर्ष में उपस्थित अनेकों संस्थानों में एक अभिनव प्रयोग चल रहा है। इसको ज्ञान के क्षेत्र में जगद्गुरु-विश्वगुरु की भूमिका में प्रतिष्ठित करने के इस महायज्ञ में सबकी भावभरी आहुति एक युगधर्म है। ❑

प्रबुद्धों को आमंत्रण (पूर्वार्द्ध)

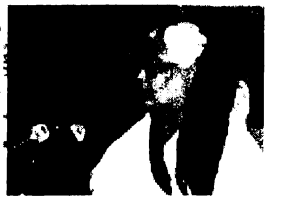

परमवंदनीया माताजी के उद्‌बोधनों की यह विशिष्टता है कि वे श्रोताओं को ममत्व के भाव से स्पर्श भी करके जाते हैं तो वहीं उनके हृदय में संकल्प को ही जगाकर जाते हैं। यहाँ प्रस्तुत एक ऐसे ही अलौकिक उद्‌बोधन के क्रम में परमवंदनीया माताजी प्रत्येक साधक को स्मरण दिलाती हैं कि प्रबुद्ध होने का अर्थ अपनी भावनाओं के जागरण से है। हमारे जीवन की सही व सम्यक दिशा निर्धारित हो पाती है यदि हम अपनी भावनाओं पर नियंत्रण रखकर वैश्विक हितों की चिंता कर पाने में समर्थ हो पाते हैं। वंदनीया माताजी, परमपूज्य गुरुदेव का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहती हैं कि यदि हम उनके जीवन से शिक्षा को प्राप्त कर सकें तो हम पाएँगे कि पूज्य गुरुदेव ने अपने व्यक्तित्व को एक ऐसी ही कसौटी पर कसा, जहाँ वे अनेकों के लिए प्रेरणास्त्रोत बन सके। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.....

भावनाओं का नियंत्रण

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हमारे आत्मीय परिजनो! आपके आने की बहुत प्रसन्नता, बहुत खुशी। आप इतनी दूर-दूर से आए, कहाँ गुजरात और कहाँ हरिद्वार। आपकी भावनाएँ यहाँ तक आपको लेकर आ पहुँचीं, जबकि हमने टेलीग्राम भी दिया था कि आप लोग न आएँ, क्योंकि यहाँ भीड़ है; लेकिन आपकी भावनाओं में उछाल आया। आपकी भावनाओं ने, आपकी निष्ठा ने यह कहा कि नहीं, हमको तो जाना ही है। हमको शांतिकुंज जाना है और गुरुजी के दर्शन करना है। माताजी को प्रणाम करना है।

बेटे! क्या यहीं तक बात सीमित हो जाएगी? नहीं, यहाँ तक सीमित नहीं होनी चाहिए। नित्यप्रति जैसे आप वहाँ से गाड़ी से चले हैं, घर से रवाना हुए हैं, आपको रोज ही इस शांतिकुंज का चक्कर लगाना है। कैसे लगाना है माताजी? पाँच मिनट की यह साधना है।

बाकी की बात मैं पीछे कहूँगी कि आप बैठ करके पाँच मिनट यह साधना कीजिए कि हम घर से चले। शांतिकुंज पहुँचे और पहुँच करके हम ऊपर गए। कहाँ गए? जहाँ कि गुरुजी ने 24-24 लक्ष्य के पुरश्चरण किए। उस सिद्धदीपक को हमने नमन किया। क्या नमन करके ही धन्य हो गए?

नहीं, उससे जो शक्ति गुरुजी ने पाई है, अपने गुरु से शक्ति पाई है, वही शक्ति पाने में हम भी समर्थ होंगे। वह शक्ति हमको भी मिलेगी। रोज-रोज आपको सारे शांतिकुंज का चक्कर लगाना है। ऊपर वहाँ तक, जहाँ तक आप हमारे पास जाते थे। वहाँ तक आपको चक्कर लगाना है। क्यों साहब! ऐसा आप क्यों कह रही हैं?

इसलिए कह रहे हैं कि आपको वह लक्ष्य याद बना रहेगा, वह उद्देश्य याद बना रहेगा, जिसके लिए हम आपको समय-समय पर झकझोरते रहते हैं। समय-समय पर हम आवाज उठाते रहते हैं और आपके द्वारा हम कुछ कराना चाहते हैं। आपको कुछ ऊँचा उठाना चाहते हैं।

जगाएँ अपनी भावनाएँ

आपकी भावनाएँ न मालूम कहाँ सो गईं, सिद्धांत जाने कहाँ चले गए, व्यक्ति पाषाण हो गया है, भावहीन हो गया है, भावनाएँ हैं नहीं? भगवान के प्रति भावनाएँ नहीं हैं। भगवान की उपासना तो करते हैं; लेकिन वहाँ भी हमारा स्वार्थ चलता है, मिलावट चलती है।

ऐसे तो हर चीज में मिलावट है, भगवान की भक्ति में भी मिलावट है। वहाँ भी हमारा स्वार्थ टकराता है, वहाँ भी हम अपने स्वार्थ के लिए करते हैं और कहते हैं—भगवान हमको बेटा दे दो, बेटी दे दो, जो कुछ भी हो, वह दे दो। आप भी कुछ देंगे क्या? नहीं, हम क्या दे सकते हैं? हमारे पास क्या है? हम तो केवल भिखारी हैं।

यह नहीं, बेटे! यह भिखारी शब्द मनुष्यों के लिए शोभा नहीं देता है। संतपन तो शोभा देता है, जिसके कि आप अनुयायी हैं। संत और ऋषिपन तो आप लोगों के लिए शोभा देता है। भिखारीपन शोभा नहीं देता है कि अमुक चाहिए, तमुक चाहिए। अरे चाहिए क्या? भगवान ने जब हमको इतना बड़ा शरीर दे दिया है, जिस पर करोड़ों रुपये की संपत्ति निछावर की जा सकती है तो हमको क्या चाहिए? कुछ नहीं चाहिए।

दया माँगें, करुणा माँगें

भगवान हमको चाहिए, तो एक चीज चाहिए, वह चाहिए करुणा, वह चाहिए दया। दया, करुणा और प्यार चाहिए। इस प्यार के सहारे, इस करुणा के सहारे हम समस्त संसार को बदलने का हौसला रखते हैं।

वह करुणा न मालूम कहाँ चली गई है? इनसान के अंदर से करुणा बिलकुल समाप्त हो गई है। यह किनकी जिम्मेदारी है? इसको कौन पूरा करेगा? बेटे! आपके साथ हम हैं, हम पूरा करेंगे और आप पूरा करेंगे। आप लोग जो बैठे हैं, जिनको कि हम बुद्धिजीवी कहते हैं, जिनको मूर्द्धन्य कहते हैं। मुरदों से क्या आशा रखेंगे, मुरदे तो मरे-मराए हैं, चाहे वे बीस साल के हैं।

एक दिन एक संत से किसी जिज्ञासु ने पूछा—"ऋषिवर! मृत्यु के क्षण का क्या महत्त्व है?" संत उसे उत्तर देते हुए बोले—"वत्स! मृत्यु के क्षण का बहुत महत्त्व है। वस्तुतः प्रत्येक क्षण—मृत्यु का ही क्षण है। इसलिए जो, जिस विषय में सोच रहा होता है, उसे मृत्यु के बाद उसी की प्राप्ति होती है। संसारी मनुष्य संसार सोचता है और योगी भगवान के विषय में सोचता है। राजा भरत 'हिरण, हिरण' करते हुए मरे, इसलिए हिरण के ही रूप में पैदा हुए। ईश्वर के विषय में सोचते हुए देह त्याग करने से ईश्वर की ही प्राप्ति होती है। फिर इस संसार में आना नहीं पड़ता।"

जिसमें जीवट है, वही जीवित है

जिसके अंदर कोई जीवट नहीं है, जिसके अंदर कोई हौसला नहीं है, जिसके अंदर कुछ कर गुजरने की हिम्मत नहीं है, उसको मुरदा कहेंगे और जिसके अंदर जीवट है, क्या वो सौ बरस का है, वह भी नौजवान है। गुरुजी कैसे हैं बेटे? अरे झुर्री पड़ गई, दाँत उखड़ गए, 80 साल के हो गए। बुड्ढे हो गए? बुड्ढे हो गए होगे तुम, वह बुड्ढे नहीं हैं बेटे! बुढ़ापा दूर-दूर तक नहीं है। क्यों नहीं है? कितने क्रियाशील हैं। संपूर्ण विश्व के लिए जो उन्होंने बीड़ा उठाया है, सफल होंगे? हाँ, सफल होने चाहिए।

हम दावा करते हैं कि विश्व को बदलने के लिए हमने जो बीड़ा उठाया है, जी-जान से मिट क्यों न जाएँ? मिट जाएँगे, तो देखा जाएगा; लेकिन उसे पूरा करने का भरसक प्रयास करेंगे। भरसक प्रयास स्वयं ही नहीं करेंगे; बल्कि लाखों की तादाद में जो हमसे जुड़े हैं, अखण्ड ज्योति पत्रिका तीन लाख निकलती है, युगशक्ति गायत्री तीन लाख निकलती है, अन्य-अन्य भाषाओं में जो हमारी पत्रिकाएँ निकलती हैं, हमारा संगठन जो इतना मजबूत है कि उसको हम आगे करेंगे।

वह आपका उत्तरदायित्व है। जनमानस में फैली हुई जो विकृतियाँ हैं, मज़हब के नाम पर, जातिवाद के नाम पर, दहेज के नाम पर जो भ्रष्टाचार और अनाचार फैला हुआ है, इसका जिहाद कौन बोलेगा? आप लोग जो बैठे हैं, जिनके अंदर जो बीज डाला जा चुका है।

आपको तो मालूम नहीं है कि आपके अंदर वह बीज डाला जा चुका है, जो वृक्ष के रूप में परिणत होना चाहिए। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों—ये होना ही चाहिए। आपके अंदर भी वह चेतना पहुँच चुकी है, जो कि दूसरों के अंदर जानी चाहिए। आप ही उसके ठेकेदार नहीं हैं। नहीं साहब! चलिए गुरुजी के दर्शन करके आना है। कर ले बेटा! माताजी के कर ले, गुरुजी के कर ले।

विश्व की चिंता करिए

क्या रखा है? तुमसे भी गए बीते हैं, शक्ल-सूरत में, फिर भी गुरुजी के यदि दर्शन करने हैं तो उनकी फिलॉसफी देखिए, उनके अंतरंग के दर्शन करिए। बाहर से दर्शन मत करिए, अंदर से करिए। अंदर से यदि दर्शन आप करेंगे, तो जिस तरीके से गुरुजी को चैन नहीं पड़ता है और बेटे! हमको नींद नहीं आती है कि संपूर्ण विश्व के कल्याण के लिए हम क्या करें, बेटे! हम क्या कर सकते हैं? आपको भी बेटे! बिलकुल वैसा ही होना पड़ेगा। आपके अंदर भी वही अग्नि की ज्वाला जलती हुई दिखाई पड़ेगी और मानवमात्र के लिए आप भी दिन-रात यही सोचेंगे कि ऐसा करेंगे, जैसा कि हर समय हमारा चिंतन रहता है, गुरुजी का चिंतन रहता है।

बेटा! उनका दिमाग खोल करके देखा जाए, तो एक क्षण भी उनका बरबाद नहीं जाता है। आप तो घंटों बरबाद करते हैं, वे एक क्षण भी बरबाद नहीं करते। सारा-का-सारा विश्व (विराट) मिशन-विश्व-मिशन, इसके अलावा कुछ भी नहीं है। आज एक भाई—दूसरे भाई का शत्रु बनता है, एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी का शत्रु बनता है, आखिर क्यों? यह चिंतन की विकृति है। यदि चिंतन सुधर जाए तब? तब फिर यह स्वर्ग हो जाएगा कि नहीं हो जाएगा। आज तो हमारे परिवार में भी स्वर्ग नहीं है।

हमने यह बीड़ा उठाया है। कौन-सा बीड़ा उठाया है कि व्यक्ति का निर्माण होना चाहिए, परिवार का निर्माण होना चाहिए, समाज का निर्माण होना चाहिए? व्यक्ति का निर्माण होगा तो परिवार का निर्माण होगा, परिवार का निर्माण होगा तो समाज का निर्माण होगा। पहले अपना निर्माण, फिर परिवार

का निर्माण, फिर समाज का निर्माण, ये आपके हाथ में है।

मशाल की चिनगारी घर-घर तक पहुँचाएँ

हम वह जलती हुई मशाल आपको सौंपते हैं और आपसे उम्मीद करते हैं कि यह मशाल लेकर घर-घर इसकी चिनगारी को पहुँचाइए, जिसमें आप भी शामिल हैं और ये बच्चियाँ भी शामिल हैं। जो हमारी बेटियाँ कहलाती हैं, जिन्होंने हमको गुरु माना है, तो ये हमारी बेटी हो गईं न, आप हमारे बेटे हो गए न, आप हमारे शिष्य हैं न। आप हमारे बेटे हैं, तो आप हमारे वजन को हलका करिए। जो काम हम करना चाहते हैं, वह काम आप करिए; क्योंकि हम हर जगह नहीं जा सकते।

हम पूरे गुजरात में कहाँ जाएँगे बताना? पूरे गुजरात में हम कहीं भी नहीं जाते; क्योंकि हमने जो संकल्प लिया है, कहीं जाते ही नहीं हैं, तो कहीं नहीं जाएँगे। कौन जाएगा, कौन करेगा? आप करेंगे। कुरीतियों को कौन हटाएगा? आप हटाएँगे। दहेज के दानव को कौन जलाएगा? आप जलाएँगे। यदि आपके अंदर करुणा है, तो आप शपथ लेंगे कि हम कभी भी दहेज नहीं लेंगे।

आज हमारी बेटियाँ, आज हमारी बहुएँ, रोज हम अखबार में यह पढ़ते हैं कि फलानी जगह लड़की जला दी गई, मर गईं, दहेज में कुँवारी रह गई। एक पेपर में पढ़ा कि उसकी तीन कन्याएँ थीं, तीनों फाँसी लगाकर मर गईं। हाँ, ऐसा क्लेश हुआ उस रोज! ऐसा लगा कि जैसे हमारी कोई शैलो चली गई, हमारी लड़की चली गई क्या? अनाचार-अत्याचार पनप रहा है। अभी और पनपेगा। क्यों नहीं पनपेगा?

जब तक हम सिद्धांतवादी नहीं बनेंगे, तब तक यह पनपता ही रहेगा और बेचारे को उलटा-सीधा काम करना ही पड़ेगा, क्योंकि उसके तो चार बेटी हैं। उनके हाथ पीले करने हैं। कोई जहर खाकर मरती है। कोई फाँसी लगाकर मरती है, किसी को मारा जाता है और हम सो रहे हैं, जिनको हम कहते हैं कि ये बुद्धिजीवी वर्ग हैं।

ऐसे कैसे बुद्धिजीवी?

हम बुद्धिजीवी हैं? हम कठोर हैं, हम पाषाण हैं। पाषाण, जिसके ऊपर कोई असर नहीं पड़ता। आपके ऊपर असर पड़ना चाहिए। आप घर-घर जाकर नारियों से भी कहेंगे। एक काम और भी

क्रियाकांड को सब कुछ मान बैठना और व्यक्तित्व के परिष्कार की, पात्रता की प्राप्ति पर ध्यान न देना—यही एक कारण है, जिसके चलते उपासना-क्षेत्र में निराशा छायी और अध्यात्म को उपहासास्पद बनने-बदनाम होने का लांछन लगा।

हमारे क्रियाकृत्य सामान्य हैं, पर उसके पीछे उस पृष्ठभूमि का समावेश है, जो ब्रह्मतेजस् को उभारती और उसे कुछ महत्त्वपूर्ण करने की समर्थता तक ले जाती है। ***—परमपूज्य गुरुदेव***

है, आपके जिम्मे है कि आप महिलाओं को भी आगे आने दीजिए।

यदि हमारा आधा हिस्सा लकवा मारा हुआ रह गया, एक पहिया साबित रह गया, तो एक पहिये से गाड़ी चलेगी क्या? दोनों पहियों से चलेगी। दोनों समान होने चाहिए। यह जिम्मेदारी किसकी है?

यह जिम्मेदारी नर की है, नारी की नहीं। नारी को यदि ऊँचा उठाया जाए, तो जिस तरीके

से आप काम करते हैं, वह भी काम कर सकती है। वह भी समाज में काम कर सकती है; लेकिन उसको उठने नहीं दिया जाता। उसको दबोचकर रखा जाता है, चाहे वह पढ़ी-लिखी ही क्यों न हो? भले से सर्विस कर रही हो। भले से कमा रही हो; लेकिन घर में गुलाम है।

नर और नारी एक समान

किसकी गुलाम है? पति की गुलाम, सास की गुलाम, वह सबकी गुलाम है। खुली हवा में साँस लेने का अधिकार उसको है कि नहीं? बिलकुल कतई अधिकार नहीं। उसको तो बस, उतना अधिकार है। गुलामी तो चली गई; लेकिन मानसिक गुलामी अभी भी है। आप इसे ऊँचा उठाइए।

इसे ऊँचा उठाएँगे, तो इसका चिंतन सुधरेगा। इसका चिंतन सुधरेगा, तो हमारे यहाँ गांधी जी जन्म लेंगे, बुद्ध जन्म लेंगे और हमारे यहाँ जाने कौन-कौन जन्म लेंगे? राम जन्म लेंगे, कृष्ण जन्म लेंगे, पैगंबर जन्म लेंगे और हमारे यहाँ ईसामसीह जन्म लेंगे। जाने कौन-कौन हमारे यहाँ जन्म लेंगे?

आज जो स्थिति है, वह तो आप भी जानते हैं और हम भी जानते हैं। अभी क्या? अभी तो देखते जाओ, हमारे घरों में ये कौन पैदा होते हैं? हमारे घरों में चोर, डकैत, जुआरी, शराबी जन्म लेंगे और मैं आपसे क्या कहूँ? राक्षस जन्म लेंगे। आप देख लेना, राक्षस हो रहे हैं। क्यों हो रहे हैं? इसलिए हो रहे हैं कि जो माता-पिता का चिंतन है, वह सारा-का-सारा घुल करके उस बच्चे में चला जाता है। हमारे रहन-सहन का जो ढंग और तरीका होता है, वही हमारे बच्चे का होता है। हम क्या आशा रखेंगे?

बेटे! पत्नी को ऊँचा उठाइए, उसका मनोबल बढ़ाइए, उसकी सेहत का ध्यान रखिए और उसको आगे बढ़ाइए। सबसे यही कहना कि हमने यह कहा है। नारी आंदोलन हमारे मुख्य कार्यक्रमों में एक है, कि नारी आंदोलन के लिए नारी को आगे आने दीजिए।

इस बात का हमको गर्व भी है कि और प्रदेशों की अपेक्षा गुजरात में नारियाँ बहुत काम कर रही हैं। हमारी बहुत लड़कियाँ काम कर रही हैं।

हमें खुशी है, हमको गर्व है; लेकिन और भी इनको आगे बढ़ने दीजिए। चिंतन की दृष्टि से इनको प्रखर होने दीजिए। नहीं साहब! हम तो हज़ामत भी बनाएँगे, तो सेफ्टी रेजर मेज पर रखा जाएगा। अच्छा साहब जी! अभी रखते हैं। अच्छा हज़ामत बन गई, चलो धोकर रखो, अच्छा साहब जी! अभी रखते हैं। पानी भी रखो, नहाने के लिए, कपड़े भी रखो, जी अच्छा! बिना दाम का, बगैर पैसे का नौकर पकड़ रखा है।

रोटी पकाने के लिए आप नौकर खरीद लाइए, तो आज के जमाने में मैं समझती हूँ कि सौ-डेढ़ सौ रुपये महीने से कम नहीं लेगा। हिसाब लगाइए, धोबी रखिए, तो धोबी कितने में आएगा और फिर एक चौकीदार रखिए, चौकीदार कितने में आएगा? सरकारी चौकीदार कितने में होते हैं, बेटे! दस हजार तक पाते हैं? और इस बेचारी को चौकीदार, धोबी, माली सब बना रखा है। यह बगैर पैसे की मिल गई है कि नहीं मिल गई है। इसका चिंतन आगे आने दीजिए; ताकि वह आपके समतुल्य हो सके।

यदि आप सच्चे अर्थों में गुरुजी के शिष्य हैं, तो कम-से-कम गुरुजी से इतना तो आप सीख लीजिए। इतना तो आप लेकर ही जाइए कि गुरुजी ने आज तक हमसे कभी भी सेवा नहीं ली है। एक गिलास पानी तक हमसे आज तक नहीं माँगा कि हमको एक गिलास पानी दें। उन्होंने हमेशा यह कहा कि मेरी सेवा यदि कोई करता है, तो मुझे ऐसा लगता है—जैसे कोई छुरा मार रहा हो। मैंने कहा कि नहीं, इस कीमत पर सेवा नहीं करनी। मैं

तो आपकी पत्नी हूँ, तो आप ऐसा क्यों कहते हैं? नहीं, अपनी सेवा आप करनी चाहिए। अपने अंदर इतना भरोसा है।

हम करें समर्पण

बेटे! उन्होंने मुझे अपने समतुल्य बना दिया है। शिक्षा की दृष्टि से तो मैं कहती नहीं हूँ; लेकिन हर दृष्टि से अपने समान बना दिया। उन्होंने मेरे हौसले को बढ़ाया और मैं आगे बढ़ती चली गई। समर्पण मेरा है। आपका भी यदि समर्पण है, तो आप भी सही मानना, आप भी बन जाएँगे, जिस तरीके से मैं बनी हूँ। मेरा समर्पण है, जो एक कदम चला, मेरे दो कदम आगे चले। कभी मैंने पीछे मुड़कर के यह नहीं देखा कि कुआँ है कि खाई है कि खंदक है। जो कुछ कह दिया, वह ब्रह्मवाक्य है।

गलत है, उसका समर्थन तो नहीं किया। गलत कभी कहा ही नहीं, तो समर्थन की कोई बात ही नहीं है। हम दूध और पानी के तरीके से हैं और एक प्राण और दो शरीर के तरीके से बँधे हुए हैं। हम एक और एक ग्यारह के तरीके से काम करते हैं। आप तो एक और एक दो भी नहीं हैं, लाश हैं। आपके घरों में तो लोग लाश के तरीके से जिंदा रहते हैं। किसी का, किसी के प्रति न प्यार है, न मुहब्बत है, न किसी का, किसी के प्रति समर्पण है, न त्याग है। यह कोई जीवन है। यह कोई जिंदगी है? यह तो नरक है।

आप से कोई क्या शिक्षा पाएँगे? आपको जो कोई देखेगा, वह कहेगा—आ! हा! हा, यही हैं गायत्री परिवार वाले देखो-देखो इनके घर में क्या हो रहा है? यही हैं गुरुजी के शिष्य? नहीं बेटे! हमको यह कलंक मत लगवाना। हम आपसे निवेदन करते हैं कि संपूर्ण संसार में जो विभीषिका के बादल छाए हुए हैं, इसका निवारण करना आप बुद्धिजीवियों का काम है।

हमारे पदचिह्नों पर चलिए

हम तो आपके लिए पदचिह्न छोड़ जाएँगे कि इन पर आप चलिए। हम हमेशा जिंदा नहीं रहने वाले हैं; लेकिन आप में से कितने नौजवान बैठे हैं, आपको तो बहुत जिंदा रहना है। वह कार्य जो हम पूरा नहीं कर पा रहे हैं, आपको पूरा करना चाहिए, आपको घर-घर जाना चाहिए। नहीं साहब! हमारी तो नाक कट जाएगी। नाक कल कटे, सो आज ही कट जाए। उसको तो आज ही कट जाने दीजिए।

बेटे! आप तो जनसंपर्क के लिए नहीं जाना चाहते। आप घर-घर में अच्छे विचार नहीं फैलाना चाहते हैं। आप लड़कियों को नहीं निकलने देना चाहते हैं, बहुओं को नहीं निकलने देना चाहते हैं; ताकि अच्छे विचार दूसरों को मिलें। आप उन्हीं सड़े-गले विचारों में, उन्हीं घटिया विचारों में लगे रहते हैं। आपके चिंतन को जरा भी मौका नहीं मिलना चाहिए? नहीं, आप बढ़िया चिंतन करिए, बढ़िया जिंदगी जिएँ, उच्चकोटि का चिंतन करिए। गांधी जी के साथ जो रहते थे, बेटे! जिन्होंने गांधी जी को अंतरंग से समझा, उन्होंने ग्रंथ लिखा।

उन्होंने लिखा कि गांधी जैसा मैंने देखा और जो पास में एक मसखरा नाई रहता था, उससे पूछा—"यह बताओ भाई, गांधी जी क्या करते रहते हैं? तुम तो हज़ामत बनाते हो न। इनके तुम ज्यादा निकट हो; क्योंकि तुमने तो शरीर छुआ है न। तो बताओ तुमको ज्यादा मालूम है। तुम घर में आते-जाते रहते हो।" उसने कहा—"मालूम नहीं, यह क्या करते रहते हैं? कुछ सूत-सा कातते रहते हैं, ऐसा मालूम पड़ता है। सरकार से कुछ मिलता रहता है, उससे न जाने क्या करते रहते हैं, मालूम नहीं, क्या करते रहते हैं, क्यों?" क्योंकि उसने केवल शरीर देखा था और उसने उनकी फिलॉसफी को नहीं देखा था। गांधी जी की फिलॉसफी को नहीं देखा था।

आप किसी भी मज़हब को देखे लें, चाहे तो कुरान उठा करके देखिए, चाहे बाइबिल उठा करके देखिए, चाहे गुरुग्रंथसाहब को उठा करके देखिए, उसमें से एक ही आवाज निकलती है कि सब मज़हब एक हैं, मानवमात्र सब एक हैं। करुणा, दया, सेवा। केवल करुणा वहीं तक न रह जाए। हाय यह क्या हुआ? इसका ऐसा हो गया। हाय करके रह जाएँगे कि उसकी मदद करेंगे।

जहाँ कहीं भी हमको पीड़ा और पतन मिलेगा, उस पीड़ा और पतन को मिटाने के लिए हमको भरसक प्रयास करना चाहिए। वह आपके जिम्मे है। आपको क्या करना पड़ेगा? दीपयज्ञ के माध्यम से जनसंपर्क के लिए आपको घर-घर जाना पड़ेगा। छोटे-छोटे आयोजनों के रूप में घर-घर जन्मदिन मनाइए। जन्मदिन मनाना नहीं आता, तो हम केक को काट देते हैं, मोमबत्ती बुझा देते हैं। हो गया जन्मदिन। क्यों मोमबत्ती जलाई है, क्यों बुझाई है? ऐसा क्यों किया? क्यों तो आपने जलाई है और फिर अशुभ कार्य क्यों किया है? आपने पाश्चात्य सभ्यता ले ली न।

जन्मदिन के माध्यम से हम उनके घर और कुटुंब वालों को वह शिक्षण दे सकते हैं कि अपनी एक बुराई निकालिए और एक अच्छाई को ग्रहण करिए; ताकि आपको देख करके दूसरा बदले। आप वहीं-के-वहीं बैठे हैं, तो आपसे क्या शिक्षण लेंगे? आपसे निवेदन कर रहे हैं कि आप जन्मदिन के माध्यम से, विवाह आंदोलन के माध्यम से आदर्श विवाह का प्रचलन प्रारंभ कीजिए, आप यहाँ आ जाइए। पाँच व्यक्ति घर के, पाँच घराती हैं, पाँच बराती, बस एक लड़का, एक लड़की आ जाइए, यहाँ शादी कर ले जाइए।

कोई खरच नहीं होगा? गाजे-बाजे में कुछ नहीं खरच होगा और दावत में तुम्हें नहीं मालूम है? दोपहर को दावत मिलेगी बेटे! दलिया, चावल, सब्जी, दाल और ज्यादा-से-ज्यादा भीड़ हुई, तो दो रोटी। इससे भी ज्यादा भीड़ हुई, तो रोटी कट, आपको यह दावत मिलेगी। इस दावत के लिए आप सब आमंत्रित हैं। इस पवित्रभूमि में आपको आना चाहिए। बार-बार आइए, पर कुछ-न-कुछ अपना ध्येय और लक्ष्य लेकर के आइए, जो हम आपसे कराना चाहते हैं। आप जो उम्मीद लेकर के आए हैं, वह तो हमको मालूम है। बेटे! हम बड़े हैं, तो हमको मालूम है।

जैसे टिटिहरी बैठी थी और समुद्र उसके अंडों को बहा ले गया। टिटिहरी ने कहा—अच्छा तेरी यह हिम्मत कि मेरे अंडे को बहाकर ले जाएगा। अच्छा अभी देखती हूँ। मेरा भी संकल्प है कि तुझे सुखा न लूँ, तो मेरा भी नाम टिटिहरी नहीं है। बेटे! हम टिटिहरी के तरीके से और जैसे कछुई होती है और अपने अंडे को छाती से लगाए रहती है। मुरगी अपने अंडों को छाती से लगाए रहती है। इस तरीके से भावनात्मक दृष्टि से हम आपको छाती से लगाए रहते हैं।

गुरुसत्ता का आश्वासन

आप विश्वास रखिए कि आप पर कभी कोई कष्ट-कठिनाई आती है, तो हमारा हृदय रो पड़ता है। यह कहता है कि हम इनकी मदद कैसे करें, किस तरीके से हम इनकी मदद करें? बेटे! आपके प्रारब्ध तो नहीं पलटे जा सकते। यह कहना तो हमारी मूर्खता होगी कि हम आपके प्रारब्धों को पलट देंगे। बेटे! पलटा तो भगवान राम से भी नहीं गया; जबकि पुत्रवियोग में दशरथ जी चले गए और सुभद्रा का अकेला लड़का अभिमन्यु था और कृष्ण देखते ही रह गए और अकेला चला गया।

उनकी बहन ने कहा कि भाई! यह बता कि लोग तुझे भगवान कहते हैं और तेरा अकेला भानजा था, वह मारा गया। तू बड़ा कठोर है, बड़ा हृदयहीन है। उन्होंने कहा—बहन, प्रारब्ध जन्म जो भोगने हैं,

वह तो सबको ही भोगने पड़ेंगे। उसके लिए तो दृढ़ता के साथ हमको मुकाबला करना चाहिए, उन परिस्थितियों का हमको मुकाबला करना चाहिए। मर गया है, तो रोते रहो, रोने से आ जाएगा? नहीं आएगा।

अपने विवेक से काम लीजिए। विवेक से आप काम लेंगे, तो आपकी जिंदगी कटती हुई चली जाएगी और विवेक से आपने काम नहीं लिया, तो आप ऐसे हैरान हो जाएँगे कि बस, मैं आपसे क्या कहूँ? आप विक्षिप्त हो जाएँगे। बेटे! मैं यहाँ समुद्र की बात कह रही थी और टिटिहरी की बात कह रही थी। तो जब टिटिहरी ने यह संकल्प लिया कि मैं समुद्र को सुखा दूँगी, तो अगस्त्य ऋषि आए।

अगस्त्य ऋषि ने कहा कि यह तो अपने प्रण की बड़ी धनी है। चलिए इसकी मदद करनी चाहिए। कहा—टिटिहरी क्या बात है? ऋषिवर! यह मेरे अंडों को बहाए ले जा रहा है। इस तरह इसकी हिम्मत कैसे हो गई?

अगस्त्य ने कहा—बेटी! तेरी मदद हम करेंगे। कहते हैं कि उन्होंने चुल्लू से ले करके पानी पिया और समुद्र को सुखा दिया। सुखा दिया कि नहीं सुखा दिया, इस बहस में मैं नहीं पड़ती, पर मैं तो उदारता के लिए कहती हूँ, करुणा के लिए, प्यार के लिए कहती हूँ तो वह प्यार और वह ममता हमारे भीतर प्रत्येक व्यक्ति के लिए होनी चाहिए।

हमारी तो करुणा आपके प्रति है ही, इसमें तो दो राय ही नहीं है, लेकिन आपकी भी हर व्यक्ति, हर इनसान, हर मानव—जो मानव के रूप में भगवान है, उसके प्रति होनी चाहिए। उस भगवान को तो अभी कहीं किसी ने देखा नहीं है। जो सर्वव्यापक है, जड़-चेतन में समाया हुआ है, उसको हम इस दृष्टि से कैसे देख पाएँगे?

उसको हम संवेदनाओं के रूप में तो समझ लेंगे कि भगवान हमारे अंदर आ गया। भगवान आ गया, तो परिवर्तन हो गया, नहीं आया, तो परिवर्तन नहीं हुआ, जैसे-के-तैसे ही बने रहे।

(क्रमशःअगले अंक में समापन)

सूफी संत राबिया प्रतिदिन कबूतरों को दाना चुगाया करती थीं। एक दिन जब वे उन्हें दाना चुगा रही थीं तो पाँच-छह नौजवान वहाँ पहुँच गए। उन्हें देखकर राबिया हँसने लगीं।

युवकों के कारण पूछने पर वे बोलीं—"जहाँ पर तुम्हारे जैसे बलिष्ठ नौजवान हों, वो धरती कितनी भाग्यशाली है।" युवक कुछ कह पाते, इससे पूर्व ही राबिया रोने लगीं।

यह देखकर युवक बेचैन हुए और उनसे रोने का कारण पूछा तो वे बोलीं—"मैं यह सोचकर रोई कि जिस सौभाग्यशाली धरती पर तुम्हारे जैसे युवा हैं, वे सब होते हुए भी सेवा से दूर क्यों हैं? यदि वे कोई बड़ी सेवा न भी कर सकें तो भी प्यासों को पानी, परिंदों को दाना और लोगों से मीठा बोलने का काम तो कर ही सकते हैं। यही खुदा के इस जहान के प्रति बड़ी सेवा होगी।"

उनके वचनों ने युवाओं को धर्मनिष्ठ जीवन जीने के प्रति प्रेरित किया।

योगमय हुआ विश्वविद्यालय

तप से प्रकाश एवं ऊष्मा की उत्पत्ति होती है। प्राणिजगत के समक्ष जीवंत उदाहरण के रूप में उपस्थित भगवान सूर्य स्वयं तपकर जगत् को न केवल आलोकित करते हैं, वरन अपनी ऊष्मा से शक्ति का संचार कर सक्रियता भी प्रदान करते हैं। यही प्रत्येक प्राणी के जीवन का आधार है। इसी प्रक्रिया से जगत् की लीला संचालित होती है और उन लीला पुरुषोत्तम भगवान की विलक्षणता का हमें बोध होता है।

जगत् कल्याण के अपने अभियान में निरत भगवान सूर्य की उसी कल्याणकारी सनातन परंपरा को पुरातन ऋषि सदैव से अपनाते चले आए हैं। पूज्य गुरुदेव ने भी इस विराट गायत्री परिवार को बनाने में स्वयं को तपाने व गलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। भूमि के भीतर एक बीज तपता व गलता है तब जाकर के पौधे के रूप में परिणति होता है व क्रमशः वृक्ष बनकर असंख्यों को लाभान्वित करता है। इस भूलोक में तप की जितनी महिमा गाई जाए वह कम है। वंदनीया माताजी के श्रद्धांजलि समारोह के दौरान के भावों, यथा—

तुम्हारी शपथ हम निरंतर तुम्हारे,
चरणचिह्न की राह चलते रहेंगे।

को देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने अक्षरशः आत्मसात् किया है। यही कारण है कि श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी के कुशल नेतृत्त्व में देव संस्कृति विश्वविद्यालय का सुसंस्कारित परिसर नित नवीन गतिविधियों का साक्षी बनता आया है। वर्तमान जीवंतता इसी की परिणति है।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के इस वर्ष के प्रथम शैक्षणिक सत्र का समापन परीक्षा के माध्यम से हुआ। छहमासीय शैक्षणिक सत्र में विभिन्न विषयों के विद्यार्थियों द्वारा परीक्षा में अपनी उपस्थिति दर्ज कराई गई।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय एक सेतु है— आधुनिक शिक्षा एवं सनातन विद्या का। प्रौद्योगिकी के इस आधुनिक युग में देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने एक ओर आर्टिफिशियल इन्टेलीजेन्स जैसे प्रकल्पों को अपने परिसर में स्थान दिया है तो वहीं धर्मविज्ञान के अध्ययन एवं जीवन प्रबंधनरूपी विद्या को भी गुरुकुल परंपरा के अंतर्गत चलाया है। इसी की एक कड़ी में परिवीक्षा के क्रम का भी शुभारंभ हुआ।

ज्ञात हो कि विश्वविद्यालय का यह कार्यक्रम अनूठा है। अपने शैक्षिक कार्यक्रम के पूरा होने से पहले, छात्रों से समाज की सेवा करने के लिए अपना समय और प्रयास खरच करने की अपेक्षा की जाती है। इस कार्यक्रम के दौरान सभी विषयों के छात्र ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में जाते हैं, जहाँ वे व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करते हैं और अपने पाठ्यक्रम कार्यक्रम के दौरान सीखे गए ज्ञान के प्रसार में भी योगदान देते हैं। इन स्थानों पर विस्तार गतिविधियों की निगरानी शांतिकुंज के क्षेत्रीय केंद्रों द्वारा की जाती है।

इसके अंतर्गत कई प्रचारात्मक कार्यक्रम जिनमें छात्र और शिक्षक सीधेतौर पर विभिन्न क्षेत्रों में समुदाय को शामिल करते हैं, जैसे—

रक्तदान, वर्षा जल संचयन, यातायात शिक्षा और विनियमन, स्मारकों का संरक्षण, वनों की कटाई, आपदा प्रबंधन, पोलियो उन्मूलन पर ध्यान केंद्रित करने वाले स्वास्थ्य अभियान आदि सम्मिलित हैं।

इसी के साथ ग्रामीण क्षेत्रों में साक्षरता को बढ़ावा देने के लिए शिक्षा, वयस्क और महिला, महिला अधिकारिता, कैरियर मार्गदर्शन और अस्पृश्यता, दहेज और व्यसनों जैसी सामाजिक बुराइयों के खिलाफ अभियान भी इसका हिस्सा हैं।

गौरतलब है कि विश्वविद्यालय शिक्षा का कोई शुल्क नहीं लेता है, बल्कि केवल रख-रखाव शुल्क ही लेता है। परिवीक्षा कार्यक्रम भी इस विश्वविद्यालय की शिक्षा की विशिष्ट विशेषताओं में से एक है।

यह अनूठा कार्यक्रम न केवल इस बात की गारंटी देता है कि छात्रों ने पाठ्यक्रम के माध्यम से जो कुछ भी सीखा है, उसे लागू करेंगे, बल्कि उन्हें मूल्यवान केरियर-संबंधी अनुभव प्राप्त करने, अपने चुने हुए क्षेत्र में संपर्क बनाने और अपने ज्ञान के माध्यम से दुनिया को बेहतर बनाने का अवसर भी प्रदान करता है। एक परिवीक्षा हर पाठ्यक्रम के लिए अनिवार्य है और विश्वविद्यालय का एक विशेष विभाग हर छात्र को एक परिवीक्षा खोजने में मदद करता है, जो उसकी आवश्यकताओं के अनुरूप हो।

वह दिवस निश्चित ही ऐतिहासिक था, जिस दिन देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी द्वारा संयुक्त राष्ट्र संघ में समस्त देशों के समक्ष योग को सांस्कृतिक धरोहर के रूप में स्वीकार्यता दिए जाने का प्रस्ताव रखा गया, जिसे कि अधिकतम देशों द्वारा स्वीकार भी किया गया। पूज्यवर की इस संकल्पना को साकार करने का अप्रतिम पुरुषार्थ आयुष मंत्रालय, भारत सरकार एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के सम्मिलित योगदान से ही संभव बन पड़ा।

उसी गौरव को प्रतिवर्ष अंतरराष्ट्रीय योग दिवस के रूप में 21 जून को विश्वभर में मनाया जाता है। इसी कड़ी में योगोत्सव एवं प्रज्ञायोग प्रोटोकाल का विधिवत् क्रम देव संस्कृति विश्वविद्यालय में संपन्न हुआ। प्रतिकुलपति जी के मार्गदर्शन में आयोजित इस कार्यक्रम में पूज्य गुरुदेव द्वारा दिए गए प्रज्ञायोग के महत्त्व को प्रकाशित करने के साथ ही शुद्ध मन एवं शुद्ध कर्म को ही योग का आधार बताया गया। देश के अमृत पर्व के काल में इस योगोत्सव कार्यक्रम के माध्यम से लोगों में जन-जाग्रति के साथ-साथ अपनी संस्कृति को आगे बढ़ाने का प्रयास किया गया। ❑

प्रसिद्ध कवि अब्दुर्रहीम खानखाना के पास एक व्यक्ति आया और उनसे पूछने लगा कि जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण कौन-सा संयम है? उन्होंने कविता के माध्यम से उत्तर दिया—

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गई सरग पताल।
खुद कह भीतर घुस गई, जूती पड़े कपाल॥

अर्थात सारे संयमों में वाणी का संयम अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जीभ खुद तो बात कहकर मुँह के अंदर चली जाती है, परंतु उसका परिणाम कहने वाले को भुगतना पड़ता है।

विश्व की एकमात्र एवं प्रथम संस्कृति

अनेकों वर्ष हो गए तब एक घटना ऐसी घटी थी, जिसका उल्लेख वर्तमान परिप्रेक्ष्य में पूर्णरूपेण प्रासंगिक हो जाता है। यह घटना उस दिन की है, जब पाश्चात्य देशों की एक लंबी यात्रा के उपरांत स्वामी विवेकानंद का आगमन पुनः भारत की धरती पर हुआ। उन दिनों श्रीलंका, भारत का ही अंग माना जाता था। 15 जनवरी, 1897 को उनका जहाज कोलंबो के बंदरगाह पर आकर के रुका। स्वामी विवेकानंद की कीर्ति तब तक भारतवर्ष के प्रत्येक कोने में पहुँच चुकी थी।

यह स्वाभाविक ही था कि उनके आगमन के समाचार ने कोलंबोवासियों के हृदय को हर्ष से भर दिया। लगभग पूरा-का-पूरा शहर ही उनके स्वागत के लिए उमड़ पड़ा। शायद ही कोई व्यक्ति शेष रहा हो, जो उनकी स्वागत सभा का हिस्सा न बना हो। प्रत्येक व्यक्ति उनको देखना, सुनना तो चाहता ही था, उनको स्पर्श कर लेने की कामना भी अनेकों के हृदय में थी।

उनकी स्वागत सभा में हजारों की भीड़ थी। उस स्वागत सभा के अध्यक्ष ने स्वामी विवेकानंद का स्वागत किया और उसके उपरांत उनसे एक प्रश्न पूछा कि स्वामी जी! आप इतने वर्षों की पाश्चात्य देशों की यात्रा पर थे। आपकी उपस्थिति का लाभ निश्चित रूप से वहाँ के निवासियों को मिला। उन्हें उस ज्ञान का लाभ मिल सका, जो उनके लिए उससे पूर्व में अलभ्य था। आपने उन्हें श्रीमद्भगवद्गीता, वेद, उपनिषद्, वेदांत, योग के ज्ञान से परिचित कराया।

सारांश में आपसे उनको बहुत लाभ हुआ, पर आपको तो इतने दिनों का अपने देश से वियोग सहन करना पड़ा—तो आपको क्या लाभ हुआ? प्रश्न निश्चित रूप से चिंतनीय था तो स्वामी विवेकानंद ने प्रश्न करने वाले स्वागत सभा के अध्यक्ष को धन्यवाद दिया और फिर उस प्रश्न का बड़ा मार्मिक उत्तर दिया।

स्वामी विवेकानंद उनसे बोले—इतने दिनों तक मैं पाश्चात्य देशों की यात्रा पर रहा तो निश्चित रूप से उसका सबसे ज्यादा लाभ मुझे ही मिला और जो लाभ मिला, वो यह मिला कि भारत छोड़ने से पहले जिन बातों को मैं भावना के आवेश में आकर सत्य मान लिया करता था, अब उनको प्रमाणपूर्वक सत्य मानता हूँ। वे बोले कि जब मैं छोटा था, विदेश नहीं गया था तो लोग कहते थे कि भारत एक पुण्य भूमि है, देवों की, ऋषियों की, अवतारों की भूमि है—तो मैं भी उस बात को दोहराया करता था, पर उस विषय में मेरा अपना कोई विश्वास नहीं था।

वे बोले कि अब जब मैं इतने लंबे समय के लिए अपनी मातृभूमि से दूर रहा हूँ तो इस बात को और भी ज्यादा सघन विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यह उद्घोष पूरी तरह से सत्य है। यदि पृथ्वी पर कोई एक ऐसा देश है, जहाँ धरती के प्रत्येक जीव को अपना कर्मफल भोगने के लिए एक-न-एक दिन आना ही पड़ता है और आए बिना उसका उद्धार संभव नहीं, कोई एक ऐसा देश है, जहाँ परमात्मा को पाने का प्रयत्न कर रही प्रत्येक आत्मा को एक-न-एक दिन

आना ही पड़ेगा और कोई एक ऐसा देश है— जहाँ दया, त्याग, करुणा, मानवता से लेकर आध्यात्मिक अनुसंधान का सर्वाधिक विकास हुआ है तो वो देश भारत का देश है।

इसके बाद वे बोले कि मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसी देश से ज्ञान की वो धारा फिर से बहेगी, जो आज नहीं तो कल, संपूर्ण विश्व को अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा से प्रकाशित करेगी और उसके लिए संपूर्ण विश्व को आज ही की तारीख से, भारत का ऋणी होने की आवश्यकता है। आज से लगभग 126 वर्ष पूर्व ये शब्द स्वामी विवेकानंद ने कहे थे।

ध्यान से देखें तो क्या ऐसा अनुभव नहीं होता है कि आज से इतने वर्ष पूर्व स्वामी विवेकानंद द्वारा कहे गए वो शब्द आज की तारीख में भी उतने ही सत्य व प्रासंगिक हैं, जितने तब थे। कल्पना करें कि यदि इस देश की धरती से योग-तप, ज्ञान-ध्यान, आस्था-अध्यात्म, वेद-वेदांत जैसे चिंतनों ने जन्म न लिया होता, एक-से-एक बढ़कर ज्ञान, कर्म व भक्ति के शिखर पुरुषों ने इस भारतीय भूमि का चयन अपने लीला संदोह के लिए न किया होता और उनके कृतित्व से संपूर्ण धरा का नभमंडल प्रकाशित न हो रहा होता तो क्या इनसान, वह इनसान बन पाता—जिस रूप में वह आज जाना जाता है। मानव को सुरदुर्लभ मानवीय काया देने का श्रेय बहुत हद तक भारतीय वैचारिक योगदान को ही जाता है।

विश्व के मानचित्र पर अनेकों ऐसे देश मिल जाते हैं, जो आज से कुछ शताब्दियों पूर्व तक मात्र नरसंहारों और इनसान के इनसान के ऊपर किए जाने वाले बर्बर अत्याचारों की वजह से ही जाने जाते थे, परंतु 2000 से भी ज्यादा वर्ष पूर्व बुद्ध आकर इस धरती पर करुणा का संदेश सुना चुके थे। फिर बुद्ध अकेले ही क्यों, महावीर, मुद्गल, रंतिदेव से लेकर अनेकों ऐसे करुणावान व्यक्तित्वों की शृंखला भारतीय इतिहास में मिलती है कि जिन्होंने **'आत्मवत् सर्वभूतेषु'** के चिंतन को आत्मसात् करके ही दिखाया।

क्या यह सत्य नहीं कि जब अनेकों देशों में लिखना-पढ़ना अभी बाल्यावस्था में ही था तब भारत में नालंदा, तक्षशिला, विक्रमशिला, कांची, नवद्वीप एवं वल्लभी जैसे विश्वविद्यालय अनेक विद्यार्थियों को ज्ञान के भाव से सुसज्जित कर चुके थे।

क्या यह सत्य नहीं कि भारत के चक्रवर्ती सम्राटों ने विश्वविजय जैसे अभियानों को जन्म देने, दूसरों का संहार करने, अनावश्यक युद्धाक्रमण करने के स्थान पर रघु, दिलीप, अज, इक्ष्वाकु एवं भर्तृहरि की भाँति मानवीय करुणा का आलिंगन करना स्वीकार किया।

सार रूप में कहें तो इनसान को इनसान बनाने का श्रेय यदि किसी एक देश को जाता है तो वह भारत को जाता है। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है कि भारत मात्र एक देश का नाम नहीं, बल्कि संस्कृति का नाम है।

सभ्यताएँ तो बनती-बिगड़ती रहती हैं, परंतु संस्कृति तो पूरी मानवता की एक ही होती है और हो सकती है। इसीलिए यजुर्वेद के ऋषि कहते हैं कि **'सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा'** यह मानवता की संस्कृति ही एकमात्र संस्कृति है।

यह भारतीय संस्कृति ही विश्व की एकमात्र और प्रथम संस्कृति है। यही कारण है कि आज इस संस्कृति के हस्ताक्षर हमको संपूर्ण विश्व में मिल

जाते हैं। अपगणों का देश अफगानों का बन जाता है, गांधार-कंधार के नाम से ख्याति पाता है तो अजरबेजान में अग्निदेव का मंदिर आतिश शाह कहलाने लगता है।

इसी तरह से स्याम—थाईलैंड कहलाता है तो मलय देश—मलयेशिया बन जाता है, गरुड़ों का वंशज स्वयं को कहने वाले इंडोनेशिया देश बसाते हैं तो वहीं काष्ठमंडप—काठमांडू कहलाता है। इस संस्कृति के हस्ताक्षर विश्व के कोने-कोने में हमको देखने को मिलते हैं।

यह एक अतुलनीय गौरव का विषय है कि भारतीय संस्कृति की एक जीती-जागती प्रयोगशाला एवं अनुसंधान केंद्र के रूप में परमपूज्य गुरुदेव ने गायत्री परिवार की स्थापना की और आज गायत्री परिवार भारतीय संस्कृति के उन्हीं सूत्र-संकेतों को जन-जन तक पहुँचाता दिखाई पड़ता है। यह समय अपनी संस्कृति के महान गौरव पर गौरवान्वित होने का और उस गौरव को जन-जन तक पहुँचाने का समय है। आइए! उसी गौरव के अधिकारी एवं प्रसारणकर्त्ता हम बनकर दिखाएँ। ❑

एक ऊँट बहुत आलसी था। वह मात्र यह चाहता था कि उसकी सारी दैनिक आवश्यकताएँ एक ही स्थान पर बैठकर पूरी हो जाएँ। एक दिन वायुमार्ग से भगवान भोलेनाथ एवं माता पार्वती उस स्थान से निकले, जहाँ ऊँट लेटा हुआ था।

भगवान को देखकर वह उनसे अनुनय-विनय करने लगा कि उसकी गरदन सौ गुना लंबी कर दी जाए, जिससे वह एक ही स्थान पर बैठकर दूर का चारा खा सके और उसे भोजन प्राप्त करने के लिए कोई विशेष परिश्रम न करना पड़े।

उसकी बेतुकी याचना सुनकर पहले तो भगवान भोलेनाथ कुछ कुपित से हुए, परंतु फिर कुछ सोचकर उन्होंने ऊँट की यह इच्छा पूर्ण कर दी। अब ऊँट एक ही स्थान पर बैठा रहता और वहीं से अपनी गरदन विभिन्न दिशाओं में घुमाकर भोजन प्राप्त कर लेता।

गरमियों के दिन यों ही बीत गए। उसके बाद बारिश का समय आया तो अब ऊँट को लगा कि वह इतनी बड़ी गरदन कहाँ छिपाए? बहुत देर ढूँढ़ने के बाद उसे एक गुफा दिखाई पड़ी। ऊँट ने बारिश से आश्रय पाने के लिए अपनी गरदन उस गुफा के अंदर घुसा दी।

वह गुफा एक शेर की थी। जैसे ही शेर को ऊँट की गरदन दिखाई पड़ी तो वह प्रसन्न हो गया। उसे तो बिना परिश्रम के ही शिकार उसकी गुफा में मिल गया था। शेर को देखकर ऊँट ने गरदन घुमाने की कोशिश तो की, परंतु जब तक वह उसे निकाल पाता, शेर उसका शिकार कर चुका था। आलसी और अकर्मण्य ऐसे ही बुरे अंत को प्राप्त करते हैं।

यह दैवी अभियान है

छंद गायत्री, देवता सविता, ऋषि विश्वामित्र महान हैं।
महामंत्र गायत्री सर्वोपरि शुभ सर्वोत्तम स्थान है।

युग के विश्वामित्र ने तपकर, ज्ञान की गंग बहाई है,
अवतरित हुईं माँ गायत्री, त्रिपदा ने शक्ति दिखाई है,
विश्वमाता का रूप ले लिया, होता सर्वत्र गुणगान है।
महामंत्र गायत्री सर्वोपरि, शुभ सर्वोत्तम स्थान है॥

अधिकार सभी को है इसका, गायत्री सबकी माता हैं,
महामंत्र वैज्ञानिक बलशाली, सविता से इसका नाता है,
स्तुति वेद स्वयं करते हैं, ऋषि-मुनि करते ध्यान हैं।
महामंत्र गायत्री सर्वोपरि, शुभ सर्वोत्तम स्थान है॥

यज्ञ और गायत्री की चर्चा, भू-मंडल पर छाई है,
मुंबई की पावन धरती पर, इसकी ध्वजा फहराई है,
जनवरी 24 से 28 सन् 24, शुभ मुहूर्त अनुष्ठान है।
महामंत्र गायत्री सर्वोपरि, शुभ सर्वोत्तम स्थान है॥

अवतारी सत्ताओं ने इसका, वरण किया जप-ध्यान किया,
वर्तमान में सुरसरि सम इसका, बहुतों ने पयपान किया,
महाप्राण श्रीराम शर्मा ने, अनुभूतिजन्य दिया ज्ञान है।
महामंत्र गायत्री सर्वोपरि, शुभ सर्वोत्तम स्थान है॥

प्रज्ञावतार की यह लीला है, जो आगे बढ़ती जाती है,
समस्त विश्व की पावन धरती पर, अपना प्रभाव दिखलाती है,
श्रद्धा-प्रज्ञा का संरक्षण, यह दैवी अभियान है।
महामंत्र गायत्री सर्वोपरि, शुभ सर्वोत्तम स्थान है।

—विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'

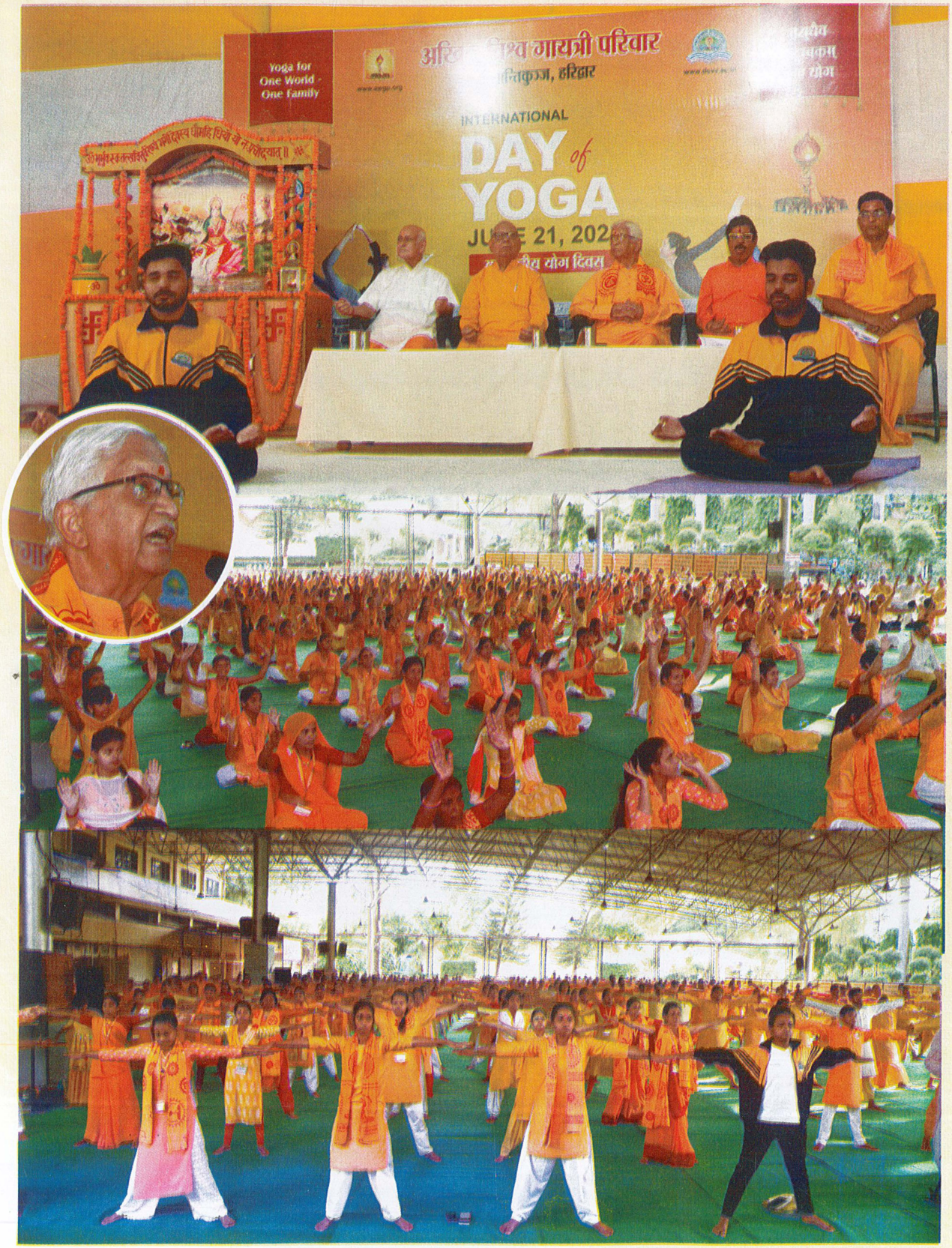

अंतरराष्ट्रीय योग दिवस– 2023 गायत्रीतीर्थ, शांतिकुंज– हरिद्वार

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-08-2023
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

अश्वमेध महायज्ञ–मुंबई के प्रयाज क्रम में भूमि पूजन समारोह उत्साहपूर्ण वातावरण में संपन्न

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल - 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org